इकाई II शिक्षा का इतिहास, राजनीति तथा अर्थशास्त्र

अध्यापक शिक्षा में समितियों और आयोगों का योगदान 4

समितियाँ और आयोग (Committees and Commission) 4

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953) 5

माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशें या संस्तुतियाँ 5

कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) 6

अध्यापक प्रशिक्षण में सुधार 6

अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम में सुधार 7

प्रशिक्षण सुविधाओं का विकास 7

निरन्तर व्यावसायिक शिक्षा 8

अध्यापक शिक्षा के लिए उचित एजेन्सी 8

अध्यापक प्रवेश परीक्षा में सुधार 8

नवीन सन्दर्भ में अध्यापकीय तैयारी 9

निरन्तर अध्यापक शिक्षा 9

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 10

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992 11

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा, 2005 12

परिप्रेक्ष्य 13

अधिगम और ज्ञान 13

विद्यालय तथा कक्षा का वातावरण 13

पाठ्यचर्या के क्षेत्र, स्कूलों की अवस्थाएँ और आकलन 14

व्यवस्थागत सुधार 14

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग, 2007 14

ज्ञान आयोग की सिफारिशें 15

यशपाल समिति रिपोर्ट, 2009 16

यशपाल समिति की सिफारिशें 16

अध्यापक शिक्षा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा, 2009 18

अध्यापको के विकास का उद्देश्य 19

सेवारत् न्यायमूर्ति समिति रिपोर्ट, 2012 19

शिक्षा एवं शिक्षा नीतियाँ 21

www.studyofeducation.com

शिक्षा और शिक्षा नीतियों के बीच सम्बन्ध (Relationship Between Policies and Education) 21
शिक्षा नीति : राष्ट्रीय विकास की सम्पर्क कड़ी के रुप में 22
शिक्षण नीति का राष्ट्र निर्माण में योगदान 23
शिक्षा नीति तथा नीति निरुपण प्रक्रिया के निर्धारक तत्त्व 24
शिक्षा नीति की निरुपण प्रक्रिया 25
निरुपण प्रक्रिया के निर्धारक तत्त्व तथा सम्बन्धित तथ्य 26
वर्तमान स्थिति का विश्लेषण 26
स्वतन्त्रता के पश्चात् उद्देश्यपूर्ण शिक्षा का योगदान 27
शिक्षा नीति तथा नीति निरुपण प्रक्रिया का मूल्यांकन 28
नीति विकल्पों का सृजन 29
नीति विकल्पों का मूल्यांकन 30
नीतिगत निर्णयन 30
नीतिगत निर्णयन के प्रमुख लक्षण 31
नीतिगत निर्णयन को प्रभावित करने वाले कारक 31
नीति कार्यान्वयन की योजना बनाना 32
कार्य योजना का निर्माण 32
राजनीतिक समर्थन तथा वित्तीय प्रावधान 32
हितधारकों की सहभागिता 33
नीतियों के प्रभाव का आकलन (Policy Impact Assessment) 33
अनुवर्ती नीति-चक्र(Subsequent Policy Cycles) 34
शिक्षा में अर्थशास्त्र की संकल्पना 35
शिक्षा अर्थशास्त्र का परिचय (Introduction of Educational Economics) 35
शिक्षा में लागत लाभ तथा प्रभावी विश्लेषण 36
अत: इनका विस्तृत विश्लेषण अलग-अलग निम्न प्रकार है- 36
शिक्षा में लागत लाभ विश्लेषण 36
शिक्षा में लागत प्रभावी विश्लेषण 37
शिक्षा का आर्थिक प्रतिफलन (Economic Returns of Education) 38
संकेतन सिद्धान्त (Signalling Theory 38
मानव पूँजी सिद्धान्त (Human Capital Theory) 39
संकेतन सिद्धान्त बनाम मानव पूँजी सिद्धान्त 40
शैक्षिक वित्त व्यवस्था की अवधारणा (Concept of Educational Finance) 41

www.studyofeducation.com

पर्याप्तता 42
न्याय संगतता 42
दक्षता 43
सूक्ष्म और स्थूल स्तर पर शैक्षिक वित्त व्यवस्था 43
आन्तरिक अथवा घरेलू स्रोत 44
बाह्य स्रोत 44
बजट निर्माण की संकल्पना (Concept of Budgeting) 44
पंचवर्षीय योजनाएँ और शिक्षा बजट (Five Year Schemes and Education Budget) 45
शिक्षा एवं राजनीति 47
शिक्षा एवं राजनीति के बीच सम्बन्ध 47
(Relationship between Politics and Education) 47
शिक्षा में राजनीति (Politics in Education) 47
शिक्षा पर राजनीति का नियन्त्रण 48
शिक्षा के राजनीति सम्बन्धी दृष्टिकोण 49
उदारवादी दृष्टिकोण (Liberal Perspective) 49
उदारवाद का अर्थ एवं परिभाषाएँ 49
उदारवाद की विशेषताएँ 49
उदारवाद के प्रकार 50
परम्परागत या नकारात्मक उदारवाद 50
सकारात्मक या आधुनिक उदारवाद 51
रुढ़िवादी दृष्टिकोण (Conservative Perspective) 52
समालोचनात्मक दृष्टिकोण (Critical Perspective) 53
राजनीति को समझने के उपागम 54
व्यवहारवादी उपागम या व्यवहारवाद (Behaviouralism) 54
व्यवहारवाद की परिभाषाएँ 54
व्यवहारवाद की प्रकृति 55
व्यवहारवादी आन्दोलन के लक्ष्य एवं उद्देश्य 55
उत्तर-व्यवहारवाद (Post-Behaviouralism) 56
उत्तर-व्यवहारवादी क्रान्ति की उत्पत्ति के कारण 57
प्रणाली-विश्लेषण या सिद्धान्त (Theory of System Analysis) 58
राजनीतिक प्रणाली के प्रतिरुप 59

www.studyofeducation.com

माँगें एवं समर्थन 60
निर्गत 60
तर्कसंगत विकल्प का सिद्धान्त (Theory of Rational Choice) 61
तर्कसंगत विकल्प सिद्धान्त की सीमाएँ 61
राजनीतिक विकास तथा राजनीतिक समाजीकरण की शिक्षा 62
राजनीतिक विकास (Political Development) 62
राजनीतिक विकास के लक्षण 63
उभरते हुए समाज में शिक्षा का स्वरुप 63
राजनीतिक समाजीकरण (Political Socialisation) 64
राजनीतिक समाजीकरण के साधन 64
राजनीतिक समाजीकरण की उपयोगिता 66

www.studyofeducation.com

अध्यापक शिक्षा में समितियों और आयोगों का योगदान

समितियाँ और आयोग (Committees and Commission)

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के समक्ष शिक्षा सम्बन्धित अनेक चुनौतियाँ विद्यमान थीं। शिक्षा प्रणाली का पुनर्गठन करना, शिक्षा के अवसरों का पूरे देश में विस्तार करना, सभी बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना, अशिक्षित प्रौढ़ों को साक्षर बनाना, माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार करना, विज्ञान प्रौद्योगिकी शिक्षा का विस्तार करना, बालिकाओं, पिछड़े व अल्पसंख्यकों के शैक्षिक विकास को सुनिश्चित करने तथा मातृभाषा प्रशिक्षक भाषा एवं राष्ट्रभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने जैसी अनेक चुनौतियाँ स्वतन्त्र भारत सरकार के सामने थीं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् वर्ष 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया था। माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने हेतु वर्ष 1952 में डॉ. मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक में शिक्षा आयोग तथा वर्ष 1964 में कोठारी आयोग की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन किया गया था। केन्द्र एवं राज्य स्तर पर अनेक शिक्षा समितियों का भी गठन किया गया। वर्ष 1968 एवं 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। इसके अतिरिक्त अध्यापक शिक्षा के

सम्बन्ध में आगे भी कई आयोग गठित हुए और उन्होंने अपनी सिफारिशें दीं। ऐसी प्रमुख समितियों एवं आयोगों के उल्लेख निम्न प्रकार हैं

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों में तीव्र परिवर्तन के कारण उनमें समन्वय स्थापित करने के लिए माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन को आवश्यक माना गया। इसी के परिणामस्वरुप वर्ष 1948 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने माध्यमिक शिक्षा की जाँच करने सम्बन्धित एक प्रस्ताव सरकार के समक्ष रखा। वर्ष 1951 में बोर्ड ने पुन: इस प्रस्ताव को दोहराया और कहा कि बालक अपने भविष्य की पृष्ठभूमि माध्यमिक शिक्षा के माध्यम से ही तैयार करता है। तत्पश्चात् माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु अविलम्ब आवश्यक कदम उठाए जाएँ। अत: भारत सरकार ने बोर्ड के इस सुझाव को स्वीकार करते हुए सितम्बर, 1952 को मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में 10 सदस्यीय आयोग का गठन किया। जिसे माध्यमिक शिक्षा आयोग कहा जाता है। चूँकि इस आयोग के अध्यक्ष एल.एस. मुदालियर थे, इसलिए माध्यमिक शिक्षा आयोग को मुदालियर आयोग के नाम भी जाना जाता है। मुदालियर आयोग ने माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित विविध प्रश्नावली तैयार कर उसे शिक्षा विशेषज्ञों, अध्यापकों और शिक्षण संस्थानों के समक्ष भेज कर अनेक प्रासंगिक जानकारियाँ प्राप्त की।

इसके अलावा अतिरिक्त के सदस्यों ने विभिन्न राज्यों में भ्रमण कर माध्यमिक शिक्षा सुधार हेतु अनेक विशिष्ट जानकारियाँ प्राप्त की। आयोग ने 14 अध्यायों में 244 पृष्ठों का प्रतिवेदन 29 अगस्त, 1953 को भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन में शिक्षण प्रशिक्षण की दशा को सुधारने के लिए महत्त्वपूर्ण संस्तुतियाँ दीं। आयोग के द्वारा दी गई प्रमुख संस्तुतियाँ निम्न प्रकार हैं

www.studyfeducation.com

माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशें या संस्तुतियाँ

माध्यमिक शिक्षा आयोग या मुदालियर आयोग की प्रमुख संस्तुतियाँ निम्न हैं

- छात्राध्यापक को एक या दो पाठ्यक्रमोत्तर क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
- अस्नातक के लिए द्वि-वर्षीय पाठ्यक्रम तथा स्नातकों के लिए एक वर्षीय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम होना चाहिए।
- संख्यात्मक अंक देने के बजाय सांकेतिक अंक दिए जाने चाहिए।
- इस आयोग ने रिफ्रेशर कोर्स पर बल दिया और अल्पकालीन तीव्र पाठ्यक्रम एवं विशिष्ट पाठ्यक्रम कार्यशालाओं तथा सेवारत् अध्यापकों के लिए गोष्ठियों इत्यादि को आवश्यक रुप से स्वीकार किया गया।
- प्रशिक्षण कॉलेजों को अप्रशिक्षित अध्यापकों के लिए अनुसन्धान कार्य करने चाहिए।
- एक विशेष अंशकालीन पाठ्यक्रमों को प्रस्तावित किया गया।
- प्रशिक्षित स्नातकों को कम-से-कम 3 वर्ष का शिक्षण अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् ही एम एड में प्रवेश दिया जाए। .

- सम्बद्ध कॉलेजों में प्रशिक्षण विभागों की स्थापना होनी चाहिए। अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए केवल सरकार ही उत्तरदायी नहीं है।
- छात्राध्यापकों से किसी भी प्रकार की फीस नहीं लेनी चाहिए और उन्हें पर्याप्त खाने-पीने और रहने की सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए।
- वस्तुनिष्ठ प्रश्न पद्धति को अपनाया जाए। उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम में एक कोर विषय रहे, जो अनिवार्य रहे; जैसे-गणित, सामान्य ज्ञान, कला एवं संगीत इत्यादि।

कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66)

डॉ. डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इस शिक्षा आयोग ने व्यावसायिक शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था की कमियों को उजागर किया। इस आयोग ने अपनी व्यापक रिपोर्ट शिक्षा व्यवस्था के उच्चीकरण पर दी। इस आयोग के द्वारा देश में शिक्षा सुधार के लिए अनेक सुझाव दिए गए।

अतः भारत की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था की जाँच करने के पश्चात् निम्न सुझाव दिए,जो इस प्रकार है:-

- प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रभावकारी शिक्षा संगठन की स्थापना की जानी चाहिए।
- अध्यापकों का शिक्षा स्तर निम्न और मध्यम कोटि का हाना चाहिए।
- उन्होंने अन्य संस्तुति में कहा कि "अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में यथार्थवाद की व्यापकता की कमी है।"
- भारत का अध्यापक प्रशिक्षण बहुत ही पारम्परिक है, जैसे कि निश्चित प्रारुप और पारम्परिक प्रविधियाँ ही शिक्षण अभ्यास में दोहराई जाती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) ने उपरोक्त कमियों को दिखाने अनेक संस्तुतियाँ दीं। आयोग के द्वारा दी गई संस्तुतियाँ निम्न प्रकार है

अध्यापक प्रशिक्षण में सुधार

- शिक्षाशास्त्र एक स्वतन्त्र शैक्षिक विषय होना चाहिए और यह बी और एम एड में एक वैकल्पिक विषय के रूप में प्रस्तावित होना चाहिए। शिक्षाशास्त्र को स्कूल तथा विश्वविद्यालय में प्रारम्भ किया जाना चाहिए। प्रत्येक प्रशिक्षण कॉलेजों में प्रभावकारी पुरातन छात्र संघ को स्थापित किया जाना चाहिए।

www.studyofeducation.com

- प्रत्येक प्रान्त में योजना के द्वारा शिक्षा के व्यापक कॉलेज की स्थापना होनी चाहिए अर्थात् कम-से-कम एक व्यापक कॉलिज की स्थापना तो प्रत्येक प्रान्त में होनी ही चाहिए। इस प्रकार से आयोग के द्वारा अध्यापक प्रशिक्षण से प्रशिक्षण जीवन के अलगाव को दर्शन के उपाय बताए गए। .

अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम में सुधार

- प्रशिक्षण कॉलेजों के स्टाफ के लिए एक प्रकार से योजनाबद्ध विषय के अनुरुप मुख्य अभिविन्यास पाठ्यक्रम का संगठन किया जाना चाहिए।
- परिशोधित शिक्षण, परिशोधित मूल्यांकन की विधियों का लगातार आन्तरिक मूल्यांकन करती हों तथा शिक्षण अभ्यास का भी प्रयोग किया जाए।
- सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा में संगठित एकीकरण पाठ्यक्रम को प्रस्तावित किया जाए, जिससे कि शिक्षकों का पाठ्यक्रम संकुचित न हो जाए। इस संस्तुति के आधार पर ही क्षेत्रीय कॉलेजों में वर्ष 1963 में 4 वर्षों का पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया गया।
- सभी स्तरों पर पाठ्यक्रमों को दोहराया जाए। प्रशिक्षण कॉलेजों के पाठ्यक्रमों का उत्थान व विकास किया जाना चाहिए। कार्य करने के दिनों में वृद्धि की जानी चाहिए अर्थात् कार्य 130 दिन किया जाना चाहिए।
- इन संस्तुतियों के पीछे यह तर्क दिया गया कि जितने अधिक दिन कार्य के होंगे उतना अधिक कार्य सम्पन्न होगा तथा योग्य शैक्षिक कार्यकर्ता की नियुक्ति की जाए।
- छात्राध्यापकों की फीस माफ हो और उन्हें छात्रवृत्ति तथा ऋण उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
- हॉस्टल तथा प्रयोगात्मक स्कूलों की सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए, जहाँ स्टाफ के लोग सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिए प्रयोग कर सकें। पुस्तकालय, प्रयोगशाला, वर्कशॉप इत्यादि की सुविधाओं में सुधार होना चाहिए।

www.studyofeducation.com

प्रशिक्षण सुविधाओं का विकास

- प्रत्येक प्रान्त को प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता पूर्ति के लिए स्वयं अपनी योजना बनानी चाहिए।
- अप्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव साफ होना चाहिए।
- संस्थाओं का आकार सामान्यत: बड़ा हो और एक योजनाबद्ध तरीके से स्थित होना चाहिए।
- प्रशिक्षण सुविधाओं के बारे में आवश्यक सुझाव दिए जाएँ। इस आयोग ने कुछ विधियाँ बताई, जिससे प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या बढ़ाई जा सके।
- यह संस्तुति की गई कि अंशकालीन और पत्राचार पाठ्यक्रम को साथ-साथ रखें, क्योंकि नियमित और औपचारिक अध्यापक शिक्षा की व्यवस्था के द्वारा इतनी अधिक संख्या में अध्यापकों को प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता।

निरन्तर व्यावसायिक शिक्षा

- प्रशिक्षण कॉलेजों में सभी प्रकार के शिक्षकों के लिए सेवारत् शिक्षा के एक संयोजन कार्यक्रम को प्रारम्भ किया जाना चाहिए।
- यह संस्तुति केवल इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए थी कि शिक्षक को उच्च शिक्षा के लिए योग्य बनाया जा सके।
- व्यावसायिक शिक्षा का कुछ अभिविन्यास उच्च शिक्षा में आवश्यक है।
- नए नियुक्त प्रवक्ता को संस्थाओं के द्वारा स्वयं को मूल्यांकित करने के लिए कुछ समय प्रदान करना चाहिए और अच्छे अध्यापकों के व्याख्यान सुनने के लिए उत्साहित करना चाहिए।
- नियमित अभिविन्यास कोर्स प्रत्येक विद्यालय में संगठित होने चाहिए और जहाँ भी सम्भव हो सके प्रत्येक महाविद्यालय में ऐसी सुविधाएँ होनी चाहिए। .
- माध्यमिक स्कूल के अध्यापकों को सम्बन्धित साधनों के माध्यम से सेवारत् प्रशिक्षण के लिए अवकाशकालीन संस्थाओं के कार्यक्रम व्यवस्थित और क्रियाशील सहभागिता के साथ बढ़ाने चाहिए।

अध्यापक शिक्षा के लिए उचित एजेन्सी

- यूजीसी को एन.सी.ई.आर.टी. के साथ अध्यापक शिक्षा के लिए एक संयुक्त समिति बनानी चाहिए। यह समिति यथाशीघ्र बनाई जानी चाहिए। .
- यह संस्तुति की गई कि राष्ट्रीय स्तर पर यू.जी.सी. और प्रान्तीय स्तर पर अध्यापक शिक्षा के प्रान्तीय बोर्ड का यह उत्तरदायित्व होना चाहिए कि इन संस्तुतियों को कार्यान्वित करें और स्तर को बनाए रखे।
- कोठारी आयोग के पश्चात् प्रथम बार ऐसा हुआ कि व्यावसायिक शिक्षा को यू.ज़ी.सी. द्वारा प्रस्तावित किया गया। इससे पहले ये अन्य संगठन; जैसे-इंजीनियरिंग कॉलेजों, मेडिकल कॉलेज आदि व्यावसायिक शिक्षा का संचालन कर रहे हैं।
- यू.ज़ी.सी. को पुस्तकालय में अनुदान देना चाहिए, जिससे अध्यापक शिक्षा के स्तर में सुधार हो सके।
- आयोग ने यह संस्तुति दी कि शिक्षक शिक्षाशास्त्रियों के लिए प्रेरणादायक कार्यक्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे कि वे अनुसन्धान कार्य करें और अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में अपना सार्थक योगदान दे सकें।

www.studyforeducation.com

अध्यापक प्रवेश परीक्षा में सुधार

- ❖ इस सन्दर्भ में यह कहा गया कि प्रवेश हेतु अधिक्षमता और ठाणि को आधार बनाया जाए न कि विश्वविद्यालय परीश्राओं के अंक एवं श्रेणी की दक्षताधारित एकीकृत अध्यापक शिक्षा को महत्व दिया गया। सकारात्मक, अभिवृत्ति के विकास के लिए पावनात्मक पश्न पर बल दिया गया।
- ❖ अध्यापकीय भावी वृद्धि के लिए सेवाकालीन कार्यक्रम संचालित करता, कार्यक्रम प्रबन्ध हेतु शोध करना, मीडिया निर्भर दूरवर्ती सेवाकालीन शिक्षा प्रणाली को विकसित करना, अधिगम सामग्रियों की पुनिश्चित आपूर्ति पर बल दिया गया और प्रथम अध्यापक शिक्षा उपाधि प्रत्यश्न विद्या से प्राप्त करना आदि को विशेष रुप से आवश्यक माना गया।

नवीन सन्दर्भ में अध्यापकीय तैयारी

- अध्यापक शिक्षा को पुनर्नवीकृत निम्न सन्दर्भों में करने की आवश्यकता को शैक्षिक दृष्टिकोण से पिछड़े हुए वर्गों के बच्चों के समाजीकरण और सहयोग को बढ़ाने के लिए, महिलाओं की सामाजिक परिस्थिति समझने के सभी सन्दर्भों में लैंगिक परिप्रेक्ष्य को सम्मिलित करने के लिए शिक्षा के तीनों ही क्षेत्रों में ज्ञान प्रदान करने की क्षमता विकास हेतु, दिव्यांग शिक्षा, निरन्तर और व्यवसाय केण्डन की तैयारी के लिए पूर्व विद्यालयीय शिक्षा आदि विशेष क्षेत्रीय योग्यता विकास हेतु विकेन्द्रित और प्रतिभागी शैक्षिक प्रबन्धन में अध्यापकीय भूमिका को समझने के लिए विशेष बल दिया गया।
- प्राथमिक शिक्षा के उदारीकरण के नवीन सन्दर्भ में अनौपचारिक विद्यालय व्यवस्था को प्रोत्साहित करना, पैरा स्कूल के माध्यम से समाज के निम्न वर्ग के बच्चों का शिक्षा में स्वागत करना, पूर्व-बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा को सम्बन्धित करना, विद्यालय को सामुदायिक केन्द्र के रूप में विकसित करना जहाँ से सामाजिक सांस्कृतिक कल्याण कार्य संचालित किए जाएँ, मानव तथा अन्य संसाधन गतिशीलता हेतु संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, लोक संगीत आदि के व्यवस्थापन, न्यूनतम अधिगम स्तरानुकूल विषय हेतु निर्माण, समुदाय-विद्यालय अधिगम प्रतिफल सम्प्रेषण एवं मूल्यांकन, एकीकरण हेतु अवबोध विकास इत्यादि को इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति पुनर्विचार समिति के द्वारा महत्त्व दिया गया।

www.studyoneducation.com

निरन्तर अध्यापक शिक्षा

- शैक्षिक संकुल का निर्माण करना आवश्यक है, जिससे कि यह अपने क्षेत्रीय अध्यापकों के लिए सेवाकालीन शिक्षा कार्यक्रम आयोजित कर सकें और जिला शिक्षा तथा प्रशिक्षण संस्थान एवं विद्यालय के मध्य सम्प्रेषण माध्यम के रुप में कार्य करें।
- इस समिति के द्वारा यह भी सुझाव दिया गया कि अध्यापक शिक्षा केन्द्रों में मात्र योग्य एवं दक्ष व्यक्तियों को ही विद्यालय तथा अन्य सरकारी संस्थानों चक्रीय आवर्तन क्रम में स्थान देना आवश्यक है न कि समस्यात्मक व्यक्तियों को।
- वर्ष 1990 में यू.ज़ी.सी. के द्वारा पाठ्यक्रम विकास केन्द्र कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया और बीएड/बीटीसी/बीए आदि के पाठ्यक्रम के लिए उद्देश्य निर्धारित करते हुए यह स्पष्ट किया गया कि विद्यालय शिक्षा के प्रति जागरुकता निर्माण, दो विषयों के शिक्षण में दक्षतार्जन निरन्तर मूल्यांकन, कौशल, ज्ञान, रुचि, अभिवृत्ति कौशल आदि का विकास किया जाना चाहिए तथा बालकों के साथ समुदाय के लिए मार्गदर्शन के रुप में कार्य करने की दक्षता विकसित करना आवश्यक है। न्यूनतम प्रवेश योग्यता स्नातक उपाधि को माना गया, जबकि चार वर्षीय पाठ्यक्रम में इण्टरमीडिएट उत्तीर्ण होना आवश्यक माना गया।

महत्वपूर्ण तथ्य *: कोठारी आयोग की सिफारिश पर शिक्षण व्यवस्था की 10 + 2 + 3 संरचना, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 के वक्तव्य में शामिल की गई थी। उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 पूर्णरुप से कोठारी आयोग के प्रतिवेदन पर आधारित थी।*

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986

जनवरी, 1985 में भारत सरकार ने एक नई शिक्षा नीति के प्रस्तुति की घोषणा की और वर्ष 1986 में यह नीति घोषित हुई। इस नीति के अन्तर्गत प्रमुख संस्तुतियाँ निम्न थीं:-

- अध्यापक शिक्षा एक निरन्तरगामी प्रक्रिया है तथा सेवापूर्व और सेवाकालीन एक अभिन्न अंग है। इस सम्पूर्ण प्रणाली का नवीनीकरण आवश्यक है। अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और प्रारम्भिक विद्यालयी अध्यापक हेतु सेवापूर्व तथा सेवाकालीन पाठ्यक्रम का संचालन जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान द्वारा किया जाना चाहिए।
- राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् अध्यापक शिक्षा संस्थाओं, पाठ्यक्रम एवं विधि सन्दर्भ में मान्यता प्रदान करे तथा अध्यापक शिक्षा संस्थान एवं विश्वविद्यालयीय शिक्षा विभागों के मध्य परिसंचार प्रबन्ध किए जाएँ।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर क्रियात्मक कार्यक्रम वर्ष 1986 के माध्यम से अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त व्यावहारिक सुधारों के लिए सुझाव इत्यादि दिए गए। अध्यापकों का स्तर समाज की संस्कृति तथा प्रकृति को व्यक्त करता है। यह भी कहा जाता है कि कोई व्यक्ति शिक्षा के स्तर से ऊँचा नहीं उठ सकता है।
- सरकार तथा समुदाय को ऐसी दशाएँ उत्पन्न करनी चाहिए, जो अध्यापकों को रचनात्मक तथा सृजनात्मक दिशा में प्रेरित करने में सहायक हों। अध्यापकों को तकनीकी संचार माध्यमों के वांछित साधनों के विकास तथा सम्बन्धित समुदाय की दशाओं, योग्यता एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।
- शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है, इसमें सेवापूर्व एवं सेवाकालीन पक्षों को अलग नहीं किया जा सकता। पहले चरण में शिक्षण शिक्षा की व्यवस्था को पुनर्व्यवस्थित किया जाएगा। अध्यापक शिक्षा के इस नवीन कार्यक्रम में सतत् शिक्षा एवं अध्यापकों की आवश्यकता पर बल दिया जाएगा, जिससे कि इस नीति से उद्देश्य पूर्ति हो सके।
- एलीमेण्ट्रीय विद्यालय टीचर्स अनौपचारिक एवं प्रौढ़ शिक्षा में लगे व्यक्तियों के प्रशिक्षण के लिए 'डिस्ट्रिक्ट इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन एण्ड ट्रेनिंग' (DIET) स्थापित किए जाएँगे तथा एनसीईआरटी के अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों को सक्षम बनाया जाएगा।
- पाठ्यक्रम तथा विधियों के निर्माण हेतु मार्गदर्शन देने के लिए वांछित संसाधन प्रदान किए जाएँगे। अध्यापक शिक्षा संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों में पारस्परिक सम्बन्धों का प्रारुप विकसित किया जाएगा। .

अन्य सिफारिशें : राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)

- *90% से अधिक ग्रामीण जनसंख्या को एक किमी की परिधि में प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध हो। साथ ही 6-14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का संकल्प दोहराया गया।*
- *प्राथमिक शिक्षा बाल केन्द्रित होनी चाहिए तथा गुणात्मकता में वृद्धि हेतु ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड को लागू किया जाए। इसके पश्चात् यह लागू भी किया गया।*
- *स्कूल छोड़ने वाले या कामगार बच्चों के लिए व्यवस्थित अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमचलाया जाए।*
- *प्रत्येक विद्यार्थी के लिए भाषा तथा पर्यटन का ज्ञान,कम्प्यूटर, विज्ञान, नैतिक गणित, शिक्षा तथा समाजोपयोगी उत्पाद कार्य (SUP.W.) का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए।*

www.studyofeducation.com

- *शिक्षा के प्रजातन्त्रीकरण हेतु मुक्त/खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाए। उच्च शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों की संख्या में बढ़ोतरी की जाए।*

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992

वर्ष 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति देश के शैक्षिक विकास में मील का पत्थर' माना जाता है। वर्ष 1990 में आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में गठित समिति ने इस नीति की व्यापक समीक्षा की है। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर शिक्षा के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने विचार किया और आन्ध्र प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री 'एन. जनार्दन रेड्डी' की अध्यक्षता में जनवरी, 1992 में, इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। शिक्षा के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने इस रिपोर्ट पर व्यापक विचार-विमर्श किया, तत्पश्चात् वर्ष 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कुछ आवश्यक परिवर्तनों का सुझाव दिया गया।
इसके परिणामस्वरूप संसद के समक्ष 7 मई, 1992 को शिक्षा के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुमोदित एवं संशोधन नीतियाँ कुछ महत्त्वपूर्ण सुझावों के साथ रखी गईं, साथ ही इस नीति को नए सिरे से लागू करने हेतु उसकी संशोधित कार्य योजना भी तैयार की गई। से 19 अगस्त, 1992 को संशोधित कार्य-नीति संसद के समक्ष रखी गई। सबके लिए प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने हेतु पाँच प्रमुख क्षेत्रों की पहचान की गई। इसके अतिरिक्त इस संशोधित कार्यान्वियन कार्यक्रम को 23 खण्डों में विभाजित किया गया।

इससे सम्बन्धित प्रमुख बिन्दु निम्न प्रकार हैं:-

- इस नीति के अन्तर्गत अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् स्थापित करने की योजना बनाई गई।
- संचार माध्यम, रेडियो, कम्प्यूटर और नई तकनीकों को शिक्षा प्रक्रिया के अंग के रुप में सम्मिलित करने की भी अनुशंसा की गई, साथ ही इसके लिए अध्यापकों को विशेष प्रशिक्षण प्रदान करने की अनुशंसा की गई, ताकि आधुनिक संचार माध्यम से वह शिक्षण संचालन में प्रभावी भूमिका निभा सकें।
- इस नीति के तहत स्कूल एवं कॉलेजों में खेल एवं अन्य शारीरिक गतिविधियों पर विशेष बल दिया गया, साथ ही विद्यार्थियों को एन.सी.सी. एवं एन.एस.एस. में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित करने का सुझाव दिया गया। इसके लिए विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति का सुझाव दिया गया।
- नीति के अन्तर्गत अध्यापकों के प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया गया। इसके लिए विशेष प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना हेतु सुझाव दिया गया। .
- अनुसन्धान एवं विकास सम्बन्धित विषयों पर काम करने हेतु अध्यापकों को विशेष प्रशिक्षण देना, ताकि कक्षा में अध्यापक छात्रों को समुचित मार्गदर्शन प्रदान कर सके तथा विषयों के सन्दर्भ में विस्तृत जानकारी दे सके।
- शिक्षा के अनुरुप विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों अथवा अध्यापकों की नियुक्ति हों; जैसे-प्रारम्भिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा एवं प्रबन्धन शिक्षा इत्यादि। प्रशिक्षित अध्यापक ही शिक्षा के उच्च मापदण्ड को स्थापित करने में सक्षम होते हैं।

www.studyofeducation.com

- इस नीति के अन्तर्गत गैर-सरकारी संगठनों के लिए विशेष विद्यालय खोलने और विद्यार्थियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए इस क्षेत्र में आगे आने के प्रावधान किए गए, साथ ही निजी संस्थानों की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु तथा प्रशिक्षित अध्यापकों को नियुक्त करने हेतु सुझाव दिया गया।
- मुक्त शिक्षा संचालित करने हेतु तथा साप्ताहिक कक्षा आयोजित करने के लिए जगह-जगह उप-केन्द्र स्थापित किया जाए, साथ ही वहाँ प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति की जाए। विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति की जाए, जिन्हें विषय की जानकारी हो, पाठ्यक्रम से परिचित हों एवं पाठ्य कला में पूरी तरह निपुण हों।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रुपरेखा 2005 को एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास करने के साधन के रुप में प्रस्तावित किया गया इसे दिसम्बर, 2005 में प्रकाशित किया गया था। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा वर्ष 2005 में शिक्षक की भूमिका एक उत्प्रेरक के रुप में होती है। इस रुपरेखा के अनुसार बच्चों के आकलन की दैनिक गतिविधियाँ एक सही तरीका है। इस पाठ्यचर्या में कक्षा (Ist) से ही मातृभाषा के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा में शिक्षा देने की वकालत की गई है।

www.studyofeducation.com

इस पाठ्यचर्या में निम्नलिखित बातें शामिल हैं:-

- बालक को क्या और कैसे पढ़ाया जाए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 इन्हीं विषयों पर ध्यान केन्द्रित करती है।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 का उदाहरण रवीन्द्रनाथ टैगोर के निवन्ध 'सभ्यता और प्रगति' से हुआ है, जिसमें उन्होंने बताया कि सृजनात्मकता और उदार सुखमय एवं आनन्दयुक्त बचपन की विशिष्ट कुंजी है।
- इस पाठ्यचर्या में ज्ञान को समृद्ध करने हेतु इसे स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ने का प्रयास किया गया है अर्थात् व्यावहारिक शिक्षण प्रणाली पर विशेष बल दिया गया है। इस पाठ्यचर्या की रुपरेखा के अन्तर्गत ऐसी कार्यप्रणाली पर बल दिया गया है, जिससे विद्यार्थी विषयों का ज्ञान रटन्त प्रणाली द्वारा अर्जित न करें। अत: पढ़ाई को रटन्त प्रणाली से मुक्त रखने हेतु उत्तम प्रयास किया गया है।
- पाठ्यचर्या को इस प्रकार से संवर्द्धित किया गया है, ताकि बच्चों का सार्वभौमिक विकास हो सकें सार्वभौमिक विकास का तात्पर्य बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास से सम्बन्धित है।
- इसके लिए बच्चों को समय-समय पर विशेष अवसर उपलब्ध करवाए जाएँ। इस पाठ्यचर्या का मूल उद्देश्य बच्चों को केवल पाठ्य-पुस्तक तक ही सीमित करना नहीं है बल्कि उनका सार्वभौमिक विकास करना है।
- परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और इसे कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना इस पाठ्यचर्या का मूल उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त एक ऐसी अधिभावी पहचान को विकसित करना, जिसमें प्रजातान्त्रिक राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय चिन्ताएँ समाहित हों। .

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के दस्तावेज में पाठ्यचर्या के निर्माण हेतु पाँच निर्देशात्मक सिद्धान्तों का प्रस्ताव रखा है।

ये प्रस्ताव निम्न हैं

परिप्रेक्ष्य

- पाठ्यचर्या को इस प्रकार से सुव्यवस्थित करना, ताकि शिक्षा अध्ययन बोझ नहीं बने। इससे अध्यापक भी अध्यापन में रुचि लेते हैं। .
- शिक्षा को रटन्त प्रणाली से मुक्त करना तथा स्कूली ज्ञान को बाह्य जीवन प्रणाली से जोड़ना आवश्यक है।
- बच्चों का समग्र विकास हो, इसके लिए पाठ्यचर्या को गुणात्मक रुप से सम्बन्धित करना आवश्यक है।
- ऐसे नागरिकों का निर्माण करना, जिनमें राजनीतिक एवं आर्थिक प्रक्रियाओं में भाग लेने की क्षमता विकसित हो, साथ ही लैंगिक न्याय, मूल्यों लोकतान्त्रिक व्यवहारों, अनुसूचित जनजातियों और विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति संवेदनशील हो।

अधिगम और ज्ञान

- बाल केन्द्रित शिक्षा का तात्पर्य बच्चों के अनुभवों, उनके स्वरों एवं उनकी सक्रिय सहभागिता को विशेष रुप से प्राथमिकता प्रदान करना।
- समाज में मिलने वाली अनौपचारिक शिक्षा तथा विद्यार्थी में अपना ज्ञान सृजित करने की स्वाभाविक क्षमता को विकसित करना।
- अवलोकन, अन्वेषण, विश्लेषणात्मक विमर्श तथा ज्ञान की विषयवस्तु विद्यार्थियों की सहभागिता का प्रमुख क्षेत्र माना जाता है।
- कर्म एवं भाषा के माध्यम से स्वयं एवं दुनिया को समझना, शिक्षा अध्ययन में इन्हें प्रासंगिक उपागम माना जाता है।
- आलोचनात्मक चिन्तन का अवसर प्रदान करना, इससे विद्यार्थियों के मानसिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

www.studyofeducation.com

विद्यालय तथा कक्षा का वातावरण

- चेतन और अचेतन दोनों रुप से बच्चे हमेशा विद्यालय के भौतिक वातावरण से निरन्तर अन्तःक्रिया करते रहते हैं। अतः कक्षा का वातावरण अनुकूल बनाया जाना चाहिए।
- कक्षा का आकार शिक्षण अधिगम क्रिया को नियमित रुप से प्रभावित करने वाला एक कारक माना जाता है, इसलिए कक्षा का आकार अनुकूल होना चाहिए।
- किंसी भी स्थिति में कक्षा में शिक्षक एवं शिक्षार्थियों का अनुपात 1 : 30 से अधिक नहीं होना चाहिए। .
- विद्यालय तथा कक्षा में अनुशासन का वातावरण ऐसा होना चाहिए, जो कार्य सम्पन्न होने में सहायता करे साथ ही बच्चों की क्षमता को बढ़ाए।

पाठ्यचर्या के क्षेत्र, स्कूलों की अवस्थाएँ और आकलन

बहुभाषित सामान्यतः एक ऐसा संसाधन है, जिसकी तुलना सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर भी किसी भी राष्ट्रीय संसाधन से की जा सकती है। इसमें तीन भाषाओं में शिक्षण की सिफारिश दी गई है।

प्रत्यक्षीकरण तथा निरुपण जैसे कौशलों के विकास में गणित महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

गणित न केवल गणितीय क्षमता को बढ़ाता है, बल्कि अमूर्त चिन्तन विकसित करने एवं तार्किक क्षमता को बढ़ाने में भी विद्यार्थियों में प्रासंगिक भूमिका निभाता है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत एक ऐसी पाठ्यचर्या का होना आवश्यक है, जो शिक्षार्थियों में समाज के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास कर सके।

आकलन का मुख्य प्रयोजन अधिगम की विभिन्न प्रक्रियाओं एवं सामग्रियों में व्यापक रूप से गुणात्मक सुधार लाना तथा उन लक्ष्यों पर पुनर्विचार करना, जो विद्यालयों में विभिन्न चरणों के लिए तैयार किए जाते हैं।

पूर्व प्राथमिक स्तर पर आकलन के अन्तर्गत बच्चों की दैनिक गतिविधियाँ, आवश्यकताएँ, स्वास्थ्य मानसिक एवं शारीरिक विकास पर आधारित होनी चाहिए।

व्यवस्थागत सुधार

- बच्चों को शिक्षा व्यवस्था में विकासात्मक मानकों का प्रयोग किया जाना चाहिए, जो अभिप्रेरणा तथा क्षमता की समग्र बढ़ोतरी की पूर्व निर्धारित मान्यताओं पर आधारित हों।
- पाठ्यचर्या को इस प्रकार निर्मित करना चाहिए, जिसमें शिक्षक शिक्षार्थियों को खेलते एवं काम करते हुए प्रत्यक्ष रुप से स्वयं अवलोकित कर सके।
- काम केन्द्रित शिक्षा का तात्पर्य बच्चों में उनके परिवेश, प्राकृतिक संसाधनों तथा जोविका से सम्बन्धित ज्ञान आधारों, सामाजिक अन्तर्दृष्टि तथा कौशलों को विद्यालयी व्यवस्थाएँ उनकी गरिमा और मजबूती के स्रोतों में बदलाव लाना।
- कार्य शिक्षा के द्वारा आर्थिक उन्नति भी निरन्तर होनी चाहिए। इसमें भी शिक्षा कार्य महत्त्वपूर्ण माना जाता है।
- काम केन्द्रित शिक्षा के साथ-साथ विद्यार्थियों के लिए शान्ति व्यवस्था बनाए रखने से सम्बन्धित शिक्षा भी अनिवार्य होनी चाहिए ताकि उनमें सहनशीलता, न्यायप्रियता, विशेष अनुराग एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन हो सके।

www.studyofeducation.com

अन्ततः राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रुपरेखा 2005 एक ऐसा दस्तावेज है, जो स्कूली व्यवस्था और दूसरे नागरिक समूहों के बीच सहभागिता की सिफारिश करता है, जिसमें गैर-सरकारी संगठन और शिक्षक समूह भी शामिल होने चाहिए। इसके लिए पहले से विद्यमान नवाचारों के अनुभवों को मुख्य धारा का स्वरुप प्रदान करने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग, 2007

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का गठन संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार के पहले कार्यकाल के दौरान तत्कालीन प्रधानमन्त्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 2 जून, 2005 को किया था। आयोग का गठन मुख्य रूप से शिक्षा व्यवस्था, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, बौद्धिक

सम्पदा तथा कृषि एवं उद्योग आदि क्षेत्रों में 21 वीं सदी की चुनौतियों के सन्दर्भ विस्तार तथा उपभोग आदि मामलों में प्रधानमन्त्री को सलाह देना था।

छ: सदस्यीय आयोग का अध्यक्ष शिक्षाविद् सैम पित्रोदा को बनाया गया था। इसका कार्यकाल अक्टूबर, 2008 तक तीन वर्ष के लिए था। आयोग ने अत्यन्त प्रासंगिक प्रतिवेदन सरकार को सौंपे।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग से सम्बन्धित कुछ प्रमुख तथ्य निम्न हैं

- राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने ज्ञान एकत्रण एवं उसके प्रसार के लिए विकास सेक्टर के कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्र चिह्नित किए; जैसे- ऊर्जा, पर्यावरण, शिक्षा, जैवविविधता तथा जल को इनमें शामिल किया गया।
- इस क्षेत्र में कार्य कर रही कुछ मुख्य संख्याओं एवं संगठनों को एक ऑनलाइन मंच के निर्माण और उसके प्रबन्धन हेतु आमन्त्रित किया गया।
- शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों के लिए ऐसे मंच विकसित करने हेतु आयोग ने अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन को आमन्त्रित किया था।
- इस मंच को प्रारम्भ करने के उद्देश्य से आयोग ने अनेक स्थानों पर कार्यशालाओं एवं बैठकों का आयोजन किया। इसके आयोजन का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे पोर्टल की स्थापना करना था, जो परस्पर अन्तःक्रिया का एक नियमित मंच बने।
- इस मंच के सृजन का मुख्य उद्देश्य बेहतर तरीके से परिपाटियों को साझा करना तथा ऐसे ढाँचे का निर्माण करना, जो शिक्षकों को अपने अनुभवों के माध्यम से मौजूदा ज्ञान तक पहुँचने, उसे लागू करने तथा उसकी महत्ता बढ़ाने की हेतु उत्प्रेरित करना था।
- टीचर्स पोर्टल की परिकल्पना राष्ट्रीय ज्ञान आयोग तथा अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन द्वारा संयुक्त रूप से की गई। वर्तमान में इसे अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन द्वारा संचालित किया जा रहा है।

www.studyofeducation.com

ज्ञान आयोग की सिफारिशें

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशें दी हैं वे राष्ट्र की शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में सुधार की कमियों को दर्शाती हैं साथ ही उसमें परिवर्तन की, सम्भावनाओं के नए द्वार भी खोलती हैं।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशें निम्नलिखित है:-

- अगले 10 वर्षों में भारत में कुल 50 केन्द्रीय विश्वविद्यालय खोले जाएं तथा 1500 विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाए।
- अंग्रेजी भाषा शिक्षण प्रथम कक्षा से अनिवार्य किया जाए।
- स्मृति सम्बन्धित परीक्षा प्रणाली के स्थान पर आन्तरिक मूल्यांकन के प्रयास को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए।
- संसदीय कानून के माध्यम से उच्च शिक्षा नियामक प्राधिकार बने, जिसे प्रासंगिक अधिकार भी दिए जाएँ।
- सरकारी राष्ट्रीय पुस्तकालय आयोग होने चाहिए, जो सूचना, सेवाओं, प्रशिक्षण और शोध सम्बन्धित कार्यों को भी देख सकें।

- ज्ञान आयोग ने व्यावसायिक शिक्षा को दो भागों व्यावसायिक शिक्षा एवं पेशेवर शिक्षा में विभाजित किया। पेशेवर शिक्षा में मेडिकल, कानून तथा प्रबन्धन शिक्षा इत्यादि को शामिल किया जाता है।
- व्यावसायिक शिक्षा विद्यालयी स्तर पर प्रदान की जानी चाहिए।
- व्यावसायिक शिक्षा को श्रम एवं रोजगार मन्त्रालय के बजाय मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के अधीन लाया जाए। .
- आयोग इस शिक्षा की योजना हेतु राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा नियोजन एवं विकास संस्थान तथा इसके प्रशिक्षण हेतु स्वतन्त्र विनिमय एजेन्सी को आवश्यकता पर बल दिया।
- शिक्षा के कुल व्यय में से 10-15% व्यय व्यावसायिक शिक्षा पर होना चाहिए। आयोग ने व्यावसायिक शिक्षा के बदले कौशल-विकास शब्द के उपयोग का भी सुझाव दिया।
- आयोग ने कानूनी शिक्षा में अनुसन्धान को बढ़ावा देने का सुझाव दिया। साथ ही इसके लिए विशेष केन्द्र स्थापित करने की भी सिफारिशें दी। .
- राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने चिकित्सा शिक्षा में सुधार के लिए कुछ आवश्यक सुझाव दिए। आयोग ने ग्रामीण चिकित्सा कार्यक्रम चलाने का सुझाव दिया।
- प्रबन्धन शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग ने सुझाव दिया कि इसके लिए स्वायत्तता स्थायी समिति का गठन हो, साथ दी इसके अन्तर्गत प्रबन्ध शैक्षिक निकाय स्थापित हो।
- अर्द्धचिकित्साकर्मी की भूमिका का विस्तार हो, उसके लिए उच्च माध्यमिक शिक्षा में व्यावसायिक प्रशिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था की जाए। आयोग ने फार्मेसी शिक्षा में सीटों की भारी वृद्धि करने का सुझाव दिया। .
- ज्ञान आयोग ने शिक्षा के विकास के क्षेत्र में आधुनिक साधनों के प्रयोग को व्यावहारिक एवं उपयुक्त बताया। इस आयोग ने शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधार करने हेतु अनेक प्रासंगिक सुझाव दिए थे। कुछ सुझावों को अविलम्ब प्रयोग में लाया गया, जिसके सकारात्मक प्रभाव भी दिखाई दिए।

www.studyofeducation.com

यशपाल समिति रिपोर्ट, 2009

यशपाल समिति का गठन फरवरी, 2008 में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय द्वारा किया गया था। इस समिति के गठन का मुख्य उद्देश्य यू.जी.सी एवं ए.आई.सी.टी.ई. की भूमिका की जाँच एवं उच्च शिक्षा में सुधार सम्बन्धित नीतियों के बारे में सरकार को विशेष सुझाव देना था।

यशपाल समिति की सिफारिशें

यशपाल समिति की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं:-

- देश के उच्च शैक्षणिक संस्थानों; जैसे-आई. आई. टी. एवं आई. आई. एम को विश्वविद्यालय के रुप में विकसित किया जाए तथा केन्द्रीय विश्वविद्यालयों को सभी तरह की शिक्षा प्रदान करने का माध्यम बनाने की सिफारिश की गई।

- आयोग ने चुनाव आयोग की तर्ज पर उच्च शिक्षा एवं शोध आयोग स्थापित करने का सुझाव दिया। रिपोर्ट में शिक्षा व्यवस्था एवं सम्पूर्ण प्रणाली की देख-रेख हेतु इस आयोग को आवश्यक माना गया। आयोग को सुपर रेगुलेटर की भूमिका निभानी चाहिए।
- यशपाल समिति ने राष्ट्रीय उच्च शिक्षा एवं शोध आयोग में ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.ज़ी.सी) एवं ए.आई.सी.टी.ई. को समाहित करने की सिफारिश की। मेडिकल काउंसिल ऑफ इण्डिया के अधिकार क्षेत्र को भी इस आयोग नियन्त्रण के दायरे में लाने की सिफारिश की गई।
- आयोग के प्रमुख प्रो. यशपाल ने अपनी रिपोर्ट में विश्वविद्यालयों के स्वरुप की विशेष रुप से व्याख्या की तथा यू.जो सी. तथा ए.आई.सी.टी.ई. जैसी संस्थानों को अप्रासंगिक बताया और कहा कि इसे समाप्त कर देना चाहिए तथा इसके स्थान पर राष्ट्रीय उच्च शिक्षा एवं शोध आयोग का गठन कर, इन दोनों उच्च संस्थानों को इसी में समाहित कर देना चाहिए।
- राष्ट्रीय उच्च शिक्षा शोध आयोग का गठन संसद में कानून बनाकर किया जाए साथ ही इसे संवैधानिक मान्यता प्राप्त हो। आयोग में 7 सदस्यों को नियुक्त किया जाए और इसके अध्यक्ष एवं सदस्यों का चयन प्रधानमन्त्री, विपक्ष के नेता और भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा किया जाए। .
- यशपाल ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि आई.आई.टी और आई.आई.एम में परीक्षा ग्रेजुएट रिकॉर्ड एक्ज़ाम की तर्ज पर ली जानी चाहिए। इस व्यवस्था से किसी विशेष क्षेत्र में छात्र की दक्षता को आसानी से जाँचा जा सकता है।
- यशपाल समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि विश्वविद्यालय का स्वरुप ऐसा होना चाहिए जहाँ कृषि, प्रबन्धन, इंजीनियरिंग प्रौद्योगिकी विज्ञान और समाजशास्त्र जैसे सभी विषयों को एक ही स्थान पर पढ़ाया जा सके। इन विषयों को पढ़ाने के लिए अलग-अलग शिक्षा संस्थान स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है।
- प्रो. यशपाल ने रिपोर्ट में कहा कि केन्द्रीय विश्वविद्यालयों का स्वरुप व्यापक होना चाहिए जहाँ स्नातक स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था हो। ज्ञान के विकास के क्षेत्र के सन्दर्भ में कहा गया कि ज्ञान को समग्र रुप में देखने की आवश्यकता है, ताकि बच्चों का रचनात्मक विकास एवं संवर्द्धन किया जा सके। इस रिपोर्ट में ज्ञान के विभिन्न पहलुओं को एकसाथ जोड़ने की कोशिश की गई।
- यशपाल समिति ने डीम्ड विश्वविद्यालयों के सन्दर्भ में कुछ आवश्यक बातें बताईं। उन्होंने डीम्ड विश्वविद्यालय को दर्जा देने वाली प्रणाली में परिवर्तन करने की बात कही। पूर्व में डीम्ड विश्वविद्यालय को मान्यता अतिशीघ्र प्रदान कर दी जाती थी, जिससे शिक्षा के स्तर में गिरावट दर्ज की जाने लगी।
- डीम्ड विश्वविद्यालयों को केवल कमाई का माध्यम बताया गया। इस समिति ने मान्यता प्रदान करने वाली प्रक्रिया को जटिल करने हेतु सुझाव दिया, ताकि डीम्ड विश्वविद्यालयों को गुणवत्तापूर्ण तरीके से स्थापित किया जा सके।
- उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा कि भारत में विदेशी विश्वविद्यालय खोलने के साथ ही विदेशी शिक्षाविद् की आवश्यकता नहीं है। हमें ऐसे शिक्षाविदों की आवश्यकता है, जो हमारे प्रतिभावान बच्चों के ज्ञान संवर्धन में सहायक बन सकें।
- शिक्षा के क्षेत्र में भविष्य की रुपरेखा तैयार करने के लिए प्रो. यशपाल की सिफारिशें अधिक प्रासंगिक ठहराई जाती है। इस रिपोर्ट को शिक्षा क्षेत्र से जुड़े सभी घटकों और हिस्सेदारों से व्यापक विचार-विमर्श के बाद तैयार किया गया था, इसलिए इस रिपोर्ट ने बच्चों के बेहतर और गुणवत्तापूर्ण भविष्य के लिए अनिवार्य तथ्यों की सिफारिश की।

अध्यापक शिक्षा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा, 2009

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ने अध्यापक शिक्षा पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढाँचा तैयार किया, जिसे मार्च, 2009 में परिचालित किया गया। इस पाठ्यचर्या का मुख्य स्वरुप एन.सी.एफ 2005 की पृष्ठभूमि पर तैयार किया गया था। यह रुपरेखा अध्यापक शिक्षा और स्कूल शिक्षा के दृष्टिकोण एवं सन्दर्भ से आपसी रुप से सम्बन्धित है। दोनों का विकास एक-दूसरे को पुनर्बलित करता है।

अध्यापक शिक्षा में समावेशित शिक्षा, समता और स्थायित्व आधारित विकास का दृष्टिकोण, शिक्षा में सामुदायिक ज्ञान की भूमिका, स्कूलों में आई.सी.टी, एवं ई-लर्निंग को समग्र रुप से सम्मिलित करने पर बल दिया गया। अध्यापक शिक्षा राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रुपरेखा 2009 के अनुसार अध्यापक के लिए कुछ बातें बताई गई हैं, जो निम्नलिखित हैं-

- बच्चों को चिन्ता एवं परवाह करें, उनके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करें तथा उन्हें प्यार दें। बच्चों को सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सन्दर्भ में समझें।
- उनकी समस्याओं एवं आवश्यकताओं को भली-भाँति समझें एवं उनकी संवेदनाओं को विकसित करें। इसके अतिरिक्त भी बच्चों के साथ एकसमान व्यवहार करें।
- अध्यापक अधिगम को मनोरंजनपूर्ण, सहभागितापूर्ण एवं अर्थपूर्ण बनाए, ताकि बच्चे किसी भी ज्ञान को आसानी से अर्जित कर लें।
- अध्यापक को समझना चाहिए कि बच्चे केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले नहीं होते हैं।
- पाठ्य-पुस्तकों और पाठ्यचर्या का नियमित रुप से आलोचनात्मक मूल्यांकन करें, साथ ही स्थानीय परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यचर्या का सन्दर्भ बनाएँ।
- अधिगमकर्ता की सामाजिक एवं व्यक्तिगत वास्तविकताओं को शैक्षणिक अधिगम प्रक्रिया के साथ अन्तर्निहित करें।
- अधिगमनकर्ता केन्द्रित गतिविधि आधारित, सहभागिता आधारित, अधिगम अनुभव, खेल-कूद, प्रोजेक्ट भ्रमण, पर्यवेक्षण संवाद परिचर्या इत्यादि के माध्यम से बच्चे सीखें तथा अध्यापक इन्हे संगठित एवं आयोजित करें। एक आयोजक के रुप में भी अध्यापक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- शान्ति का मूल्य, जीवन के लोकतान्त्रिक मार्ग, समानता, न्याय, स्वतन्त्रता, बन्धुता, धर्मनिरपेक्षता के महत्त्व को सामाजिक पुनर्रचना में शामिल करें। ज्ञान को महत्ता प्रदान करने हेतु न समझें, बल्कि इसके महत्त्व स्पष्ट करें, ताकि इसके माध्यम से बच्चों को ज्ञान की प्रासंगिकता समझ में आ सके।

अध्यापकों के अन्तर्निहित गुण एवं आवश्यकताएँ केवल अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या द्वारा छात्र-अध्यापक को निम्न पहलुओं में मिल सकते हैं-

- पैडॉगोंगी में व्यावसायिक कौशल विकसित करना, पर्यवेक्षण करना, प्रलेखीकरण, विश्लेषण, निर्वचन ड्रामा, ड्राफ्ट कहानी, कथन एवं दृष्टिकोणात्मक जाँच क्रियान्वित करना है।

www.studyofeducation.com

- स्वयं निर्देशित अधिगम को क्षमता की आदत विकसित करना, स्वयं सोचने की समझ, स्वयं को दृष्टि, नए विचारों का आत्मसात्करण विकसित करना, स्वयं की आलोचना करना एवं समूह में कार्य करना।
- विषय की विषयवस्तु के साथ नियमित रुप से जुड़े रहना, अनुशासित एवं सामाजिक वास्तविकताओं का ज्ञान, विषयवस्तु को विद्यार्थियों की सामाजिक समझ से सम्बद्ध करना तथा आलोचनात्मक चिन्तन विकसित करना।
- अपनी और दूसरों की समझ, अपने विश्वास, संवेग और इच्छाएँ, कल्पनाएँ, आत्मचिन्तन की क्षमता को विकसित करना। इसके अतिरिक्त आत्मचिन्तन को स्वीकारना, लचीलापन लाना तथा सृजनात्मकता को विकसित करना इत्यादि।
- हमें बच्चों के पर्यवेक्षण एवं उनके साथ व्यावहारिक रुप से जुड़े रहना, साथ ही बच्चों के हमेशा सम्पर्क में रहना तथा सम्प्रेषण बनाए रखना आवश्यक है। .

अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्या के क्षेत्र में अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्या के तीन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का अभिविन्यास किया है, जो इस प्रकार हैं-

शिक्षा के आधार: इसमें तीन प्रमुख उपक्षेत्र शामिल है-अधिगमकर्ता अध्ययन, समसामयिक अध्ययन, शैक्षिक अध्ययन। .

पाठ्यचर्या और पैडॉगॉगी: इसमें दो महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं-पाठ्यचर्या अध्ययन एवं पैडॉगॉगी अध्ययन। .

स्कूल अन्तःशिक्षुता (इण्टर्नशिप) इस दृष्टिकोण से अध्यापक में व्यावसायिक क्षमता, संवेदनशीलता और कौशलों में सम्पूर्ण निपुणता विकसित हों।

इस रुपरेखा में सेवारत् शिक्षा पर भी व्यापक रुप से विचार-विमर्श किया जाता है।

अध्यापको के विकास का उद्देश्य

अध्यापकों के नियमित रुप से व्यावसायिक विकास के मुख्य उद्देश्य हैं-

- खोज, अन्वेषण एवं अनुभवों का विकास करना।
- शैक्षणिक अनुशासन एवं विद्यालय की अन्य पाठ्यचर्या को अभिनूतन या नवीनीकृत करना।
- ज्ञान की क्षमता एवं समग्रता को बढ़ाना।
- शैक्षिक और सामाजिक समस्याओं के प्रति समझ विकसित करना और उसे अभिनूतन बनाना।
- शिक्षा को अन्य व्यावसायिक शिक्षा के साथ जोड़ना; जैसे विकास और परामर्श इत्यादि।
- बुद्धिमत्तापूर्ण अलगाव को जोड़कर अपने अनुभव को दूसरों के साथ विचार-विमर्श करना।

हुए शिक्षण प्रक्रिया के दौरान अति प्रशिक्षण, अनियमितता, अति ऊपरी आदर्शों अनुशासन से हमेशा बचना चाहिए। इस प्रकार उद्देश्यों को ध्यान में रखते अध्यापक शिक्षा के सभी स्तर हेतु पाठ्यचर्या क्रियान्वित की जाए।

सेवारत् न्यायमूर्ति समिति रिपोर्ट, 2012

www.studyofeducation.com

शिक्षा में गुणात्मक सुधार एवं अध्यापकों की भूमिका को हुए शिक्षा न्यायमूर्ति वर्मा समिति ने अपनी रिपोर्ट में महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए। इस समिति को गठन वर्ष 2011 में किया गया था। इस समिति ने मौजूदा अध्यापकों की स्थिति में व्यापक सुधार हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए। इस समिति की रिपोर्ट के में अनेक गुणात्मक सुधार किए गए।

इस समिति की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र एवं राज्य स्तर पर अनेक सुधार किए गए। इसके अन्तर्गत पाठ्यक्रम एवं विषय-वस्तु की गुणवत्ता में भी परिवर्तन किए गए तथा शिक्षक तैयारी की विधि की गुणवत्ता में भी व्यापक सुधार किया गया। जे.एस. वर्मा समिति की रिपोर्ट शैक्षिक सुधार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कड़ी मानी जाती है। इसे शिक्षा का आधुनिक मॉडल सुधार भी माना जाता है। समिति ने मुख्य रुप से अध्यापकों की भूमिका एवं उनकी भागीदारी को स्पष्ट किया है।

अध्यापकों के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों एवं उनके दायित्व को स्पष्ट करते हुए, इस समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें दी-

- सेवारत् अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में व्यापक सुधार किए जाएँ। कार्य में अध्यापकों की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। अतः शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार किए बिना शिक्षण व्यवस्था को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता।
- शिक्षक को पेशेवर बनाने की आवश्यकता है, साथ ही परिस्थिति एवं जरुरत के अनुरुप शिक्षकों की गुणवत्ता पर नियमित रुप से सुधार किया जाना चाहिए।
- अध्यापकों के सम्बन्धित विषयों के ज्ञान में वृद्धि की जानी चाहिए। विषयों की अधिक-से-अधिक जानकारी शिक्षा सुधार को महत्त्वपूर्ण कड़ी मानी जाती है। विषय की जानकारी के अभाव में अध्यापक सही रुप से अध्यापन कार्य नहीं कर सकता।
- वर्मा समिति ने अध्यापकों को विशेष प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पर बल दिया। इसके लिए उन्होंने सुझाव दिया कि अध्यापकों को विशेष प्रशिक्षण देने हेतु केन्द्र एवं राज्य स्तर पर प्रशिक्षण संस्थान खोले जाएँ। इन संस्थानों में अध्यापकों को विषय एवं अध्यापन सम्बन्धित प्रशिक्षण दिए जाएँ।
- समिति ने सिफारिश की कि सेवारत् अध्यापक शिक्षा के लिए एक प्रभावी फ्रेम वर्क नीति बनाई जाए। यह फ्रेम वर्क नीति राज्य, जिला एवं उप-जिला स्तर पर क्रियान्वित की जाए। नीति के क्रियान्वयन राज्य सरकार की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो। इसमें राज्यों में संचालित सभी निजी शैक्षणिक संस्थानों को भी शामिल किया जाए।
- अध्यापक शिक्षा सहित विभिन्न कार्यक्रमों में सक्रिय भूमिका निभाए। कार्यक्रमों की समयावधि उद्देश्यों द्वारा निर्धारित हों। विद्यालयों में आयोजित होने वाले कार्यक्रम मुख्य रुप से शिक्षाशास्त्र, अधिगम, अभ्यास एवं पुस्तक विश्लेषण से सम्बन्धित हों, ताकि कार्यक्रम के साथ-साथ ज्ञान भी अर्जित किया जा सके।
- अध्यापक शिक्षा में समितियों और आयोगों का योगदान
- प्रशिक्षण केन्द्रों में प्रशिक्षण के अतिरिक्त अनेक प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ। प्रशिक्षण का कार्यक्रम सामान्यतः प्रशिक्षण के उद्देश्यों एवं विषय-वस्तु तथा उपागमों द्वारा निर्धारित हो।
- समिति ने अध्यापक एवं अध्यापन के क्षेत्र में बेहतर सुधार के लिए एक कार्य योजना को विकसित करने का सुझाव दिया। समिति ने केन्द्र एवं राज्य स्तर पर अलग-अलग कार्य योजना नीति बनाने की सिफारिश की।
- समिति ने केन्द्र एवं राज्य स्तर पर अलग-अलग शैक्षणिक संस्थानों को स्थापित करने हेतु सिफारिश की, साथ ही नीतियों को क्रियान्वित करने हेतु सरकार लोगों की सहायता प्राप्त करे, इसकी भी सिफारिश की। .

www.studyofeducation.com

- वर्मा समिति की सिफारिशों के आधार पर वर्ष 2015-16 के अकादमिक सत्र से देश में शिक्षा स्नातक (बीएड) कार्यक्रम की अवधि बढ़ाकर 2 वर्ष कर दी गई।
- समिति ने सेवारत् शिक्षकों के लिए विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की सिफारिश की। इसके लिए प्रशिक्षण केन्द्रों को स्थापित करने का सुझाव दिया। समिति ने सिफारिश की कि प्रशिक्षण केन्द्रों को अध्ययन केन्द्र से पृथक् रखा जाए। .
- प्रशिक्षण के दौरान विभिन्न प्रकार के सेमिनार एवं कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए।
- सेवारत् शिक्षकों को तकनीकी ज्ञान अर्थात् ऑडियो, विडियो एवं कम्प्यूटर से अवगत कराया जाए।
- विषयों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में समिति ने सिफारिश की कि सेवारत शिक्षकों को विषयों के सन्दर्भ में भी विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाए ताकि अध्यापक को विषयों के बारे में समग्र जानकारी प्राप्त हो सके। समिति ने केन्द्र एवं क्षेत्रीय अधिकारियों के मध्य समन्वय स्थापित करने पर विशेष बल दिया। इस रिपोर्ट के अन्तर्गत उच्च शिक्षा में गुणात्मक सुधार एवं सेवारत् अध्यापकों के अध्यापन कला की उच्चतर वृद्धि में, प्रशिक्षण को महत्त्वपूर्ण माना गया।

इस प्रकार शिक्षा में गुणात्मक सुधार एवं सेवारत् अध्यापकों के व्यवहार में निरन्तर सुधार हेतु न्यायमूर्ति वर्मा समिति की रिपोर्ट को अधिक प्रासंगिक माना गया है। वर्मा समिति ने कुछ महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक संस्थानों के क्रियाकलापों में विशेष परिवर्तन के लिए सिफारिश की थी, जिसे तत्कालीन सरकार द्वारा लागू भी किया गया।

www.studyofeducation.com

शिक्षा एवं शिक्षा नीतियाँ

शिक्षा और शिक्षा नीतियों के बीच सम्बन्ध (Relationship Between Policies and Education)

शिक्षा ही किसी समाज और राष्ट्र की जागृति का मूल आधार होती है। अत: शिक्षा का मुख्य उद्देश्य साक्षरता के साथ-साथ जीवन की उपयोगिता में भी होना चाहिए। शिक्षा नीति से अभिप्राय शिक्षा में कतिपय सुधारों से होता है। इसका सम्बन्ध भावी पीढ़ी से होता है। नीतियों और शिक्षा के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। प्रभावी नीतियों के माध्यम से शिक्षा सम्बन्धित प्रभावी सुधार किए जाते हैं तथा शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन किए जाते हैं, ताकि भावी पीढ़ी इससे लाभान्वित हो। शिक्षा नीति के द्वारा हम अपने समय के समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूर्ण रूप से सार्थक सिद्ध करने हेतु कुछ अपेक्षित मानसिक और बौद्धिक जागृति को तैयार करने लगते हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में शिक्षा सम्बन्धित विविध प्रकार के आयोगों और समितियों का गठन हुआ। इनसे आशातीत सफलता भी मिली। इस सन्दर्भ में महात्मा गाँधी की बुनियादी शिक्षा की दृष्टि अधिक कारगर और महत्त्वपूर्ण साबित हुई। गाँधीजी की इन्हीं नीतियों के परिणामस्वरुप भारत में बेसिक विद्यालयों की शुरुआत की गई। वर्ष 1953-54 में भारत सरकार ने शिक्षा पद्धति पर

गम्भीरतापूर्वक विचार करके माध्यमिक शिक्षा समिति का गठन किया। इसे मुदालियर समिति भी कहा जाता है। इसके अनुसार प्राथमिक शिक्षा चौथी से बढ़ाकर पाँचवीं कक्षा तक कर दी गई।

इसी प्रकार से वर्ष 1964, 1966, 1968 एवं 1975 में शिक्षा सम्बन्धित नीतियों का निर्धारण करने हेतु अनेक समितियाँ गठित की गईं। नीतियों के माध्यम से जहाँ एक ओर शिक्षा का निरन्तर विकास होता है, वहीं नीतियों के माध्यम से ही शिक्षा सम्बन्धित कार्य योजनाओं में व्यापक सुधार किया जाता है। नीतियाँ शिक्षा को और शिक्षा नीतियों

को प्रभावित करती हैं। नीतियों को शिक्षा प्रक्रिया में मूल सुधार से जोड़कर देखा जाता है। सुधार के अनुरूप नीतियों को क्रियान्वित किया जाता है। सुधार की प्रक्रिया निरन्तर गतिशील होती है। शिक्षा में बुनियादी स्तर पर जाने वाले परिवर्तनों के द्वारा नीतियों का परिणाम बताया जाता है। इसी के अन्तर्गत शिक्षा क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के विशिष्ट साधनों एवं उपागमों का अनुप्रयोग किया जाता है।

शिक्षा क्षेत्र में आधुनिक संसाधनों का प्रयोग, शिक्षा में एकरूपता, शिक्षा में प्रभावी बदलाव ये सभी नीतियों प्रभाव को दर्शाते हैं। अतः नीतियों एवं शिक्षा के मध्य अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। शिक्षा को प्रभावी बनाने की में नीतियाँ वह साधन होती हैं, जिसके माध्यम से उद्देश्यपूर्ण लक्ष्यों की प्राप्ति जाती है।

www.studyeducation.com

शिक्षा नीति : राष्ट्रीय विकास की सम्पर्क कड़ी के रूप में

भारत के राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में 'सबके लिए शिक्षा नीति' हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है। शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य के निर्माण का वह अनुपम साधन है, जिसके माध्यम से वर्तमान की रुपरेखा इस प्रकार क्रियान्वित की जाती है, कि उज्ज्वल भविष्य का निर्माण किया जा सके। इसी सिद्धान्त को राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण धुरी माना गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावी एवं गुणात्मक सुधार लाने के उद्देश्य से अनेक समितियाँ गठित की।

सर्वप्रथम वर्ष 1948 में **डॉ. राधाकृष्णन** के नेतृत्व में विश्वविद्यालय समिति का गठन किया गया था। इसी समिति की सिफारिश के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) का गठन (वर्ष 1956 में) किया गया था।

वर्ष 1952-53 में भारत सरकार ने शिक्षा प्रणाली पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए माध्यमिक आयोग का गठन किया, जिसमें मुदालियर को प्रमुख बनाया गया। इसे मुदालियर आयोग भी कहा जाता है। मुदालियर आयोग ने शिक्षा सुधार के क्षेत्र में अनेक प्रासंगिक सुझाव दिए। इस आयोग की सिफारिशों के आधार पर पाठ्यचर्या में कोर विषय को शामिल किया गया, जिससे शिक्षा को केवल ज्ञान तक ही नहीं, बल्कि विकास के प्रतिमानों को भी साथ जोड़ा जा सके। इस आयोग ने सिफारिश दी कि प्रशिक्षण महाविद्यालयों की समुचित व्यवस्था की जाए तथा माध्यमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण कॉलेजों का दर्जा बढ़ाया जाए तथा उन्हें निःशुल्क प्रशिक्षण दिया जाए।

वर्ष 1986 में भारत सरकार द्वारा स्कूल शिक्षकों का एक विशेष कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इसके लिए सम्पूर्ण देश में 10-10 दिन के कैम्प लगाए गए। इन कैम्पों का प्रमुख उद्देश्य शिक्षकों को अपनी व्यावहारिक दक्षता में बढ़ोतरी करना था। वर्ष 1986 में लगभग 4.2 लाख और वर्ष 1987 में 4.38 लाख स्कूल शिक्षकों ने पूरा लाभ उठाया।

वर्ष 1987-88 में दो प्रमुख कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए, जो निम्न प्रकार हैं
1. जिला शैक्षिक एवं प्रशिक्षण संस्थान
2. माध्यमिक शिक्षकों के शिक्षा संस्थानों का सुदृढीकरण

इस प्रकार, स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ। शिक्षा संस्थाओं, शिक्षकों और छात्राध्यापकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि दर्ज की गई।

वर्ष 1964-66 में शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने हेतु निम्न नीतियाँ बनाई गई, जो राष्ट्र विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ऐसी कुछ नीतियाँ इस प्रकार है-

- प्रत्येक राज्य में अध्यापक शिक्षा परिषदों की स्थापना की गई।
- प्रशिक्षण संस्थानों में प्रसार सेवा विभाग का गठन किया गया।
- प्रशिक्षण संस्थानों के शिक्षकों के लिए ग्रीष्मकालीन अभिनय कामों का आयोजन किया गया।
- प्रशिक्षण महाविद्यालय के पाठ्यक्रमों एवं विषय-सामग्री में आवश्यक परिवर्तन एवं सुधार करना।

वर्ष 1961 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) की स्थापना की गई। परिषद् द्वारा चार क्षेत्रीय शिक्षा कार्यालयों की स्थापना की गई, जो इस प्रकार हैं-उत्तरी क्षेत्र (अजमेर), पूर्वी क्षेत्र (भुवनेश्वर), पश्चिमी क्षेत्र (भोपाल), दक्षिणी क्षेत्र (मैसूर)।

राष्ट्रीय नीति 1986 के अन्तर्गत शिक्षा क्षेत्र में अनेक सुधार किए गए, जो शिक्षा के साथ-साथ राष्ट्र विकास के लिए भी आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए। ऐसे कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं-

I. अध्यापकों की शिक्षा प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन लाया गया।
II. जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना की गई, जिनमें प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों तथा अनौपचारिक शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा के कार्यकताओं के प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्था की गई।

www.studyofeducation.com

शिक्षण नीति का राष्ट्र निर्माण में योगदान

शिक्षा नीति को राष्ट्रीय विकास के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी माना जाता है। एक सुदृढ़ शिक्षा नीति न केवल समाज को प्रभावित करती है, बल्कि राष्ट्र के निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके महत्त्वपूर्ण योगदान निम्नलिखित हैं-

- ➢ शिक्षा नीति शिक्षा को तर्कसंगत और वैज्ञानिक अभिवृत्ति बनाकर राष्ट्र विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।
- ➢ शिक्षा के आधुनिकीकरण, सामाजिक परिवर्तन एवं विकास तथा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक धरोहर के सम्प्रेषण में शिक्षा नीतियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ज्ञान देने तथा अनुभवों की पुनर्रचना में शिक्षा नीति प्रासंगिक भूमिका निभाती है।

इससे ऐसी क्षमता उत्पन्न होती है, जो समाज को गतिशील बनाती है, साथ ही निरन्तरता एवं परिवर्तन की चुनौतियों का सामना करने हेतु साहस उत्पन्न करती है।

- यह अध्यापक में मूल्यपरक, मूल्य प्रतिबद्धता तथा मूल्य सम्प्रेषण की संवेदनशीलता को बढ़ाती है। यह अध्यापकों को छात्रों में सौन्दर्यबोध विकसित करने योग्य बनाती है। .
- शिक्षा नीति या इससे सम्बन्धित नीतियाँ अध्यापकों में छात्रों के ज्ञान का विकास, शारीरिक शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं को समझने में सहायता करती है, साथ ही छात्रों के कार्यों में सहायता करने हेतु प्रेरित करती है। जिससे छात्रों में ज्ञान, कौशल व क्षमता निर्माण को बढ़ावा मिलता है।
- यह अध्यापकों में देशभक्ति, राष्ट्रीय एकता, विश्वशान्ति तथा मानव अधिकारों के संरक्षण की भावना उत्पन्न करने हेतु संवेदनशीलता का विकास उत्पन्न करती है।
- शिक्षा नीति के माध्यम से पाठ्यचर्या में व्यापक सुधार करके इसे बहुपयोगी बनाया जा सकता है। पर्यावरण तथा पारिस्थितिकीय समस्याओं से परिचित कराने में शिक्षा नीति की कार्य योजनाएँ प्रासंगिक भूमिका निभाती हैं। विज्ञान प्रौद्योगिकी, सूचना प्रौद्योगिकी, अनुसन्धान एवं शोधकार्य न्धित कार्यों को प्रोत्साहित कर नवीनतम शिक्षा नीति राष्ट्रीय विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- शिक्षा को लोकत्यापीकरण बनाना शिक्षा नीति का मूल उद्देश्य माना जाता है। उदाहरणस्वरुप औपचारिकेत्तर शिक्षा, महिला शिक्षा, रोजगारपरक शिक्षा, व्यवसाय पर आधारित शिक्षा का विकास एवं शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के उद्देश्य से नवोदय विद्यालयों की स्थापना करना शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो राष्ट्रीय विकास में मुख्य पृष्ठभूमि का निर्माण करती है।

www.studyofeducation.com

शिक्षा नीति तथा नीति निरुपण प्रक्रिया के निर्धारक तत्त्व

शिक्षा को मानव संसाधन का सार माना जाता है, जो देश के सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों को सन्तुलित करने में महत्त्वपूर्ण एवं उपचारात्मक भूमिका निभाती है। भारत के नागरिक इसके महत्त्वपूर्ण संसाधन बेहतर गुणवत्ता वाला जीवन प्रदान करने के लिए मौलिक शिक्षा के रुप में विकास और देखभाल की आवश्यकता है। इसके लिए उनके समग्र विकास को आवश्यकता है, जोकि शिक्षा को मजबूत नींव के निर्माण से किया जा हैं, ऐसे में सवा सौ करोड़ जनसंख्या वाले मजबूत देश को अपने नागरिकों को सकता है।

इसके लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा नीति का निर्धारण किया जाता है, जिसके निरुपण हेतु विभिन्न प्रक्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता है। जिसमें निरुपण के दौरान विभिन्न घटकों को ध्यान में रखा जाता है, जिससे भारत की शिक्षा व्यवस्था में गुणवत्ता को शामिल कर लक्ष्य उन्मुखी बनाया जा सके। अत: नीति निरुपण प्रक्रिया तथा निर्धारक तत्त्वों से सम्बन्धी तथ्यों का अध्ययन आवश्यक है।

शिक्षा नीति की निरुपण प्रक्रिया

शिक्षा नीति की निरुपण प्रक्रिया गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण होने के साथ उत्तरदायी भी होती है, क्योकि अच्छी गुणवत्ता की नई शिक्षा, नई खोजों, नए ज्ञान, नवाचार एवं उद्यमिता का आधार होती है, जो व्यक्ति के साथ-साथ देश के विकास एवं समृद्धि की शुरुआत करती है। इसके लिए शिक्षा के पाठ्यक्रमों और अध्यापन कार्य को समाज एवं अर्थव्यवस्था के माध्यम से प्रासंगिक बनाने की आवश्यकता होती है।

इसके अतिरिक्त समस्या के समाधान की गुणवत्ता एवं कलात्मक सोच, अभ्यास के माध्यम से सीखने और युवावस्था से ही आत्मविश्वास के साथ अपनी बात रखने की कला को बढ़ावा देने की आवश्यकता होती है। मानव इतिहास के आदिकाल से शिक्षा का विविध प्रकार से विकास और प्रसार होता रहा है। प्रत्येक देश अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता को अभिव्यक्ति देने और चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी विशिष्ट शिक्षा प्रणाली विकसित करता है, लेकिन देश के इतिहास में कभी-कभी ऐसा समय भी आता है जब लम्बे समय से चली आ रही व्यवस्था में परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है।

आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, तकनीकी व्यवस्था एवं राजनीति के अनेक ऐसे पहलू हैं, जिससे शिक्षा नीतियाँ प्रभावित होती हैं। हमारे देश की आर्थिक एवं तकनीकी व्यवस्था इतनी प्रबल एवं उन्नत हो गई है कि आज ये किसी भी लक्ष्य को साधने में पूर्णरूप से सक्षम हैं। इसे विभिन्न कालक्रमों में निर्धारित शिक्षा नीति के रुप देखा जा सकता है। वर्ष 1968 की शिक्षा नीति लागू होने के बाद देश में शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ। पूरे देश शिक्षा की समान संरचना एवं सभी राज्यों द्वारा 10 + 2 + 3 की प्रणाली को स्वीकार करना, 1968 की नीति की सबसे बड़ी देन मानी जाती है।

इस प्रणाली के अनुसार स्कूली पाठ्यक्रम में छात्र-छात्राओं को एक समान शिक्षा देने के अतिरिक्त विज्ञान एवं गणित को अनिवार्य विषय बनाया गया और कार्यानुभव को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। इसके पश्चात् राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1980 को निरुपित किया गया, जिसमें प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धता, बाल केन्द्रित शिक्षा, कामगार बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम तथा गुणवत्ता के साथ महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ाने जैसी जरुरतों को निर्धारित किया गया।

इसी प्रकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992 के अन्तर्गत शिक्षण में अध्यापकों के प्रशिक्षण पर बल तथा शिक्षण में रेडियो, कम्प्यूटर तथा अन्य संचार माध्यम को शिक्षण में आवश्यक बताया गया। इतना ही नहीं पाठ्यचर्या के माध्यम से का को बढ़ाने पर बल दिया गया।

शिक्षण की गुणवता रहे हैं। इससे परम्परागत मूल्यों के ह्रास का खतरा उत्पन्न हो गया है और वर्तमान परिवेश में भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन हो समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतन्त्र तथा व्यावसायिक नैतिकता के लक्ष्यों की प्राप्ति में निरन्तर बाधाएँ उत्पन्न हो रही हैं। हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में 'सबके लिए शिक्षा' भौतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता है। अत: इसके लिए नीति निरुपण में निर्धारक तत्त्वों को पहचानना तथा नीतियों में समावेशित करना महत्त्वपूर्ण होता है।

www.studyofeducation.com

निरुपण प्रक्रिया के निर्धारक तत्त्व तथा सम्बन्धित तथ्य

शिक्षा नीति शिक्षा नीति निरुपण प्रक्रिया के तत्त्वों में व्यक्ति का विकास, संसाधनों को उपलब्धता तथा उपयोग, गुणवत्तापूर्ण ज्ञानार्जन, समावेशी विकास के लक्ष्य, सामाजिक-समता विकास, आधुनिकता, बौद्धिकता, कौशलता, निपुणता, नीति विकल्पों का सृजन, निर्णयन, विकल्पों का निर्धारण तथा मूल्यांकन जैसे आदि महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को शामिल किया जाता है। जिससे शिक्षा को बेहतर एवं गुणवत्तापूर्ण बनाकर व्यक्ति, समाज तथा देश का विकास किया जा सके। इन तत्त्वों एवं नीति निरुपण सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख निम्न प्रकार है-

- शिक्षा के द्वारा ही धार्मिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों के लिए आवश्यकतानुसार जनशक्ति का विकास होता है।
- शिक्षा के आधार पर ही अनुसन्धान और विकास को सम्बल मिलता है, जो राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की आधारशिला है। .
- शिक्षा का विकास सामाजिक दायरे में होता है। एक शिक्षित समाज ही विकसित राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। सामाजिक जीवन शैली नवाचार को प्रगतिशील बनाती है, जो परिस्थितियों के अनुरुप बदलती रहती है।
- जिन सिद्धान्तों पर राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था की परिकल्पना की गई है, वे सिद्धान्त हमारे संविधान में ही निहित हैं। भारत में शिक्षा नीति का क्रियान्वयन संवैधानिक मूल्यों के अनुरुप होना आवश्यक है, ताकि राष्ट्र की सम्प्रभुता एवं अखण्डता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। .
- यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि सभी शैक्षिक कार्यक्रम धर्मनिरपेक्ष मूल्यों, समानता, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक क्षमता, आधुनिक तकनीक पर आधारित हों।

भारत की शिक्षा के क्रियान्वयन में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श का पालन किया जाता है, ताकि शिक्षा के माध्यम से शान्ति, नैतिक एवं व्यावहारिक मूल्यों का भी विकास हो। इस परम्परा के अनुसार शिक्षा व्यवस्था का यह प्रयास होता है कि नई पीढ़ी में विश्वव्यापी दृष्टिकोण सुदृढ़ हो तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना बढ़े। अभी तक जितनी भी शिक्षा सम्बन्धित नीतियाँ बनी हैं, वे सभी भारत की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को ध्यान में रखकर बनाई गई हैं। ये ऐसे कारक है, जो शिक्षा नीति एवं इसकी निरुपण प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में शिक्षा नीति का क्रियान्वयन वस्तु स्थिति को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसके क्रियान्वयन को वर्तमान स्थिति के सन्दर्भ में देखा जा सकता है।

www.studyofeducation.com

वर्तमान स्थिति का विश्लेषण

वैश्विक स्तर पर भारत आर्थिक रुप से उभरता हुआ एक शक्तिशाली देश है। आजादी के बाद भारत अलग-अलग क्षेत्रों में गम्भीर चुनौतियों का सामना करते हुए सफलता के मार्ग पर अग्रसर हुआ है। राज्यों की भूमिका एक कल्याणकारी संस्था के रुप में उभरी है। आर्थिक विकास एवं आधारभूत संरचनाओं के निर्माण में राज्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। शिक्षा को भी विकास प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा माना गया है।

प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को राष्ट्रीय विकास का विशेष अंग मानते हुए सरकार ने शिक्षा के प्रति सकारात्मक नीति अपनाई है। शिक्षा को सभी लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क बना दिया गया। वर्ष 2009 में अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा अधिनियम

पारित कर शिक्षा प्राप्ति को वैधानिक रूप प्रदान किया गया। मानव संसाधन स्वयं एक पूँजी है, परन्तु इसकी गुणात्मकता का मापन शिक्षा द्वारा ही किया जाता है।

मानव पूँजी विकास, विकास परिधि के चारों ओर घूमने वाला एक प्रासंगिक पहलू है। मानव पूँजी का विकास शिक्षा के विकास से प्रभावित होता है। वर्ष 2002 में संविधान के 86वें संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत, संविधान में अनुच्छेद 21A को जोड़कर शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया, साथ ही शिक्षा के अधिकार को 11वें मूल कर्त्तव्य के रूप में शामिल कर लिया है। शिक्षा के प्रति सरकार की नीतियों में सकारात्मक बदलाव वर्तमान समय की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है। इस अधिनियम के लागू होने के बाद सरकार ने स्कूलों में छात्रों की संख्या बढ़ाने के उद्देश्य से कुछ आवश्यक कदम उठाए हैं; जैसे-शिक्षा नीति को लचीला बनाया गया, **मिड-डे मील योजना** संचालित की गई, विद्यालयों की संख्या बढ़ाई गई, **सर्वशिक्षा : स्कूल चले अभियान** चलाया गया, इसके अतिरिक्त पहले से लागू **प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम** को भी प्रोत्साहित किया गया।

विकास और कुशलता युवा छात्राओं में लिंग अन्तराल को परिमार्जित करता है। अत: उनके स्वास्थ्य एवं समस्थानिक वृद्धि के लिए विद्यालय में पोषणयुक्त भोजन उपलब्ध करवाना अनिवार्य है, जिसके अन्तर्गत मिड-डे-मील योजना लागू की गई। सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए शिक्षा को एक महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है।

इसी सन्दर्भ में कॉण्डरसेट ने सामाजिक इच्छा सिद्धान्त (Social Choice Theory) दिया था। उनका तर्क है कि शिक्षा एक संवैधानिक अधिकार है। उनका मानना था कि उचित सामाजिक परिणाम एवं भागीदारी में गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षा आवश्यक साधन है। शिक्षा में सुधार लाने से युक्तियुक्त आगत प्राप्त होते हैं। शिक्षा के लिए आवश्यक समझ एवं उद्देश्यों को जानने के लिए नीति के उद्देश्यों को समझना आवश्यक है।

www.studyofeducation.com

स्वतन्त्रता के पश्चात् उद्देश्यपूर्ण शिक्षा का योगदान

स्वतन्त्रता से लेकर वर्तमान समय तक केन्द्र सरकार द्वारा जितनी भी नीतियाँ बनीं, सभी उद्देश्यपूर्ण थी। समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप नीतियों में भी परिवर्तन किए गए। 'सामाजिक शिक्षा' जो मुख्यतः साक्षरता, स्वास्थ्य, स्वच्छ विज्ञान एवं आर्थिक सुधार पर विशेष बल देती है। सामाजिक शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक मजबूत शिक्षा नीति का क्रियान्वयन करना आवश्यक है। वर्ष 2000 में सभी के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा लागू होने के बाद शिक्षा प्रतिशतता में उत्तरोत्तर वृशि दर्ज की गई। महिलाओं की शिक्षा अनुपात में अनुकूल वृद्धि दर्ज की गई। उदाहरणस्वरूप स्यान्त्रता प्राप्ति के समय जहाँ महिला साक्षरता दर 8.86% थी वहीं वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार वर्तमान में यह प्रतिशत 64.6%, हो गया है। इस शिक्षा की प्रवृत्ति ने महिलाओं को बड़ी संख्या में नामांकन लेने हेतु प्रेरित किया।

इसी का परिणाम रहा कि वर्ष 2009 से 2013 के बीच 56% महिलाओं ने स्कूलों में प्रवेश लिया, जो वर्तमान (2019) में यह संख्या बढ़कर 69% हो गई है। 1 किमी. की दूरी में स्थित प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश लेने की संख्या में भारी वृद्धि दर्ज की गई। माध्यमिक शिक्षा में दाखिला लेने वालों की संख्या भी बढ़ी। निश्चित रूप से अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा अधिनियम के कारण शिक्षा के प्रसार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

इन अधिनियमों के माध्यम से सरकार ने शिक्षा को समावेशी प्रारुप प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त शिक्षार्थियों को अध्ययन सम्बन्धित सभी बुनियादी आवश्यकताएँ राज्यों द्वारा उपलब्ध करायी जाती हैं। स्कूल ड्रापआउट को रोकना सरकार के समक्ष गम्भीर चुनौती थी, परन्तु इसकी संख्या में काफी कमी दर्ज की गई है। ग्रामीण एवं छोटे शहरों में आँगनवाड़ी कार्यक्रम सफलतापूर्वक संचालित किए जा रहे हैं। स्कूल-पूर्व शिक्षा के विकास में आँगनवाड़ी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ ही मध्याह्न भोजन योजना, कौशल विकास योजना जैसे कार्यक्रम विभिन्न शैक्षणिक स्तरों पर कार्य करके बच्चों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का संचार कर लक्ष्योन्मुखी शिक्षा को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हैं।

शिक्षा नीति तथा नीति निरूपण प्रक्रिया का मूल्यांकन

भारत शिक्षा के विकास पर प्रासंगिक धनराशि ख़र्च करता है। शिक्षा नीति द्वारा सुझाए गए सिफारिशों को लागू कराने हेतु सरकार की ओर से श की गईं। लेकिन वर्ष 2017-18 के आर्थिक सर्वेक्षण के अन ने शिक्षा पर कुल व्यय की राशि ₹ 4.41 लाख करोड़ निघ की अनेक कोशिशों के पश्चात् भी भारत में शिक्षा स्तर में गया है। भारत में शिक्षा की अपर्याप्तता को चार भागों में वि है-शैक्षणिक अवसर की अपर्याप्तता, शैक्षणिक पहुंच का पहुँच की अपर्याप्तता, शिक्षा परिणाम की अपर्याप्तता।

शैक्षिक अवसर की अपर्याप्तता को दूर करने हेतु सरकार द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं, परन्तु अन्य तीन अपर्याप्तताओं के कारण यह समस्या पहले की भाँति बनी रही। भारत में शिक्षा सम्बन्धित सबसे प्रमुख समस्या यहाँ उपलब्ध पारम्परिक मान्यताएँ (मानक) हैं। आज भी भारत में पाठ्यचर्या पारम्परिक फ्रेमवर्क पर आधारित हैं। अध्यापन प्रक्रिया अधिक जटिल एवं अव्यावहारिक है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन के अनुसार, भारत में शिक्षा की मूल समस्या यह है कि यहाँ सबसे अधिक उच्च शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है तथा प्राथमिक शिक्षा के लिए कोई विशेष नीति नहीं बनाई जाती।
सरकार की अनेक कोशिशों के बावजूद स्कूल ड्रापआउट की समस्या आज भी बनी हुई है, क्योंकि आर्थिक रुप से तंग स्थिति भी इसमें मुख्य रुप से जिम्मेदार है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या अधिक चुनौतीपूर्ण एवं गम्भीर है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ अध्ययन के दौरान बीच में ही स्कूल जाना छोड़ देती हैं। एक प्रभावी शिक्षा नीति के निरुपण में सबसे बड़ी बाधा सामाजिक परम्पराएँ हैं। अशिक्षित समाज में नीतियों का क्रियान्वयन सार्थक रुप से नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त आर्थिक पक्ष भी मुख्य रुप से जिम्मेदार माना जाता है। सरकार ने आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए निजी शिक्षा संस्थानों में 25% सीटें आरक्षित कर रखी हैं, परन्तु निजी संस्थान आर्थिक फायदों के लिए सरकार की इस नीति को अनदेखा करते रहे हैं।

नीतियाँ तभी प्रभावी ढंग से लागू होती हैं जब नीतियों को लागू करने के लिए प्रभावी एवं सार्थक कदम उठाए जाएँ अन्यथा नीतियाँ महज कागजी दस्तावेज बनकर रह जाती हैं। भारत में शिक्षा नीति के असफल होने का एक अन्य मुख्य कारण शिक्षण व्यवस्था की अपर्याप्तता भी है। योग्य अध्यापकों के अभाव में अध्यापन प्रणाली अव्यवस्थित है। अध्यापकों की योग्यता निर्धारित करने हेतु अनेक समितियों द्वारा मानक निर्धारित किए गए हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश इन मानकों को आज तक पूरी तरह से लागू नहीं किया जा सका है।

www.studyofeducation.com

आज भी विद्यालयों में नियमित अध्यापकों का अभाव है तदर्थ अध्यापकों के माध्यम से शिक्षण प्रणाली क्रियान्वित की जा रही है, जिनमें योग्यता का पूर्णतः अभाव रहता है। सरकारी शिक्षण संस्थानों की स्थिति अधिक चिन्तापूर्ण है। निर्धारित मानक को पूरी तरह से निरुपित करके ही शिक्षा-नीति को एक दिशा प्रदान की जा सकती है। इसके बावजूद सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों को संचालित कर लोगों को जागरुक किया है, जिसके परिणामस्वरुप शिक्षा में लोगों की भागीदारी बढ़ने के साथ साक्षरता दर में भी वृद्धि हुई है।

नीति विकल्पों का सृजन

नीति विकल्पों का सृजन सामान्यत: वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत निर्णयकर्ता नवीन विकल्पों का निर्माण करते हैं। किसी कार्य के लिए दिए गए विकल्पों के आधार पर निर्णय लेने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सतत विकास के लिए नीति विकल्पों का सृजन अनिवार्य तत्त्व माना जाता है। शिक्षा के विकास के क्षेत्र में नीति विकल्पों का सृजन अनिवार्य माना जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् यह अपेक्षा की गई थी कि शिक्षा का स्वरुप भारतीय दृष्टिकोण से अपनी आवश्यकताओं के अनुरुप होगा, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। शिक्षा में सुधार हेतु व्यापक कदम उठाए गए, अनेक आयोग एवं समितियाँ बनाई गईं, उन्होंने अच्छे सुझाव भी दिए, परन्तु राजनीतिक इच्छा शक्ति के अभाव में उनका क्रियान्वयन नहीं हो पाया।

शिक्षा प्रणाली की कुछ प्रमुख चुनौतियाँ हैं- प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार, उच्च शिक्षा के व्यय में कमी लाना तथा इसे लोगों के लिए सुलभ बनाना है। नीति विकल्पों का सृजन विद्यमान नीतियों में उत्पन्न विसंगतियों को दूर करने के उद्देश्य से किया जाता है। ऐसी नीतियाँ अधिक कारगर एवं प्रभावी होती हैं। 21वीं शताब्दी की वैश्विक अर्थव्यवस्था ऐसे वातावरण में उन्नति कर सकती है, जो रचनात्मक एवं काल्पनिकता, विवेचनात्मक दृष्टिकोण और समस्या के समाधान से सम्बन्धित कौशल पर आधारित हो। अनुभवमूलक विश्लेषण शिक्षा और आर्थिक उन्नति के मध्य सुदृढ़ सकारात्मक सम्बन्ध होते हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में स्कूल जाने वाले 6-18 वर्ष के बच्चों की संख्या 30.5 करोड़ पाई गई है, जिनकी आबादी देश की कुल आबादी से 25% से अधिक है।

भारत में शिक्षा के विकास से सम्बन्धित अनेक नीतियाँ बनीं। नीतियों के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक सुधार हुए, परन्तु इन नीतियों का सही रुप से क्रियान्वयन नहीं हो पाया। इसके परिणामस्वरुप वैकल्पिक नीतियों के माध्यम से सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई।

नीति विकल्पों के सृजन की आधारभूत संकल्पनाएँ निम्नलिखित हैं-

- सभी स्तरों पर शिक्षा पूरी तरह स्वायत्त हो।
- शिक्षा मातृभाषा में हो।
- सिद्धान्त एवं व्यवहार का सन्तुलित समन्वय हो।

- ➢ एकात्मकता एवं समग्रता का दृष्टिकोण हो।
- ➢ शिक्षा व्यापार-व्यवसाय न होकर सेवा का माध्यम हो।
- ➢ मूल्य आधारित शिक्षा का विकास हो।
- ➢ आध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वय हो।
- ➢ इसे संविधान के मूल कर्त्तव्यों में जोड़ा जाए।
- ➢ प्राचीन भारतीय ज्ञान-परम्परा एवं आधुनिकता का समायोजन हो।
- ➢ शिक्षा भारतीय पारिवारिक संकल्पना को सुदृढ़ करें।

नीति विकल्पों का निर्माण विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसे सुधारात्मक प्रक्रिया का हिस्सा माना जाता है। इसके माध्यम से नीतियों को क्रियान्वयन परिस्थितियों के अनुसार किया जाता है।

नीति विकल्पों का मूल्यांकन

www.studyofeducation.com

नीति विकल्पों का निर्माण समस्याओं के समाधान हेतु किया जाता है, परन्तु वैकल्पिक है। अकसर राजनीतिक इच्छा शक्ति के अभाव में नीतियाँ अधिक प्रभावी नहीं हो पाती नीतियाँ तभी प्रभावी एवं अनुकूल होती हैं जब उसका निरुपण सार्थक तरीके से होता हैं, ऐसे में नीति-विकल्पों का निर्माण भी निष्फल सिद्ध हो जाता है। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से नीतियाँ तभी कारगर होती हैं, जो लोगों के हित को साध सके। ऐसी ही नीतियाँ लोगों द्वारा स्वीकार भी की जाती हैं। ऐसी नीतियाँ जो लोगों के हितों पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करें, उसका प्रतिकार होना स्वाभाविक हो जाता है। शिक्षा नीति में गुणात्मक सुधार करने के उद्देश्य से नीतियों का क्रियान्वयन हुआ, परन्तु विविध वैचारिक कारणों से इन नीतियों को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया। समय-समय पर सरकार के द्वारा भी संवैधानिक उपाय किए गए, परन्तु उचित क्रियान्वयन के अभाव में ये कदम प्रभावी सिद्ध नहीं हुए। नीतियों को सुधार प्रक्रिया का माध्यम माना जाता है।

इसके द्वारा एक प्रभावी फ्रेमवर्क तैयार किया जाता है, जिसमें मूल्यों को निर्धारित किया जाता है, परन्तु जमीनी स्तर पर इसे लागू करना जटिल प्रक्रिया माना जाता है। यह नीति विकल्प उद्देश्यों को साधने के दृष्टिकोण से एक उत्तम साधन है, जिसका निर्माण अनुभवी लोगों द्वारा किया जाता है। अनेक नीतियों के निर्माण के बावजूद शिक्षा क्षेत्र में गुणात्मक सुधार आज तक नहीं हो पाया। इसके लिए राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव, सामाजिक अवसंरचना, आर्थिक पिछड़ापन, रुढ़िवा परम्पराएँ मुख्य रुप से जिम्मेदार हैं।

नीतिगत निर्णयन

नीतियाँ, योजनाओं का प्रमुख भाग माना जाता है, जो कार्य एवं कार्यविधि को निर्णयन द्वारा प्रभावित करती हैं। नीतिगत निर्णय परिस्थितियों के अनुरुप क्रियान्वित होते हैं। निर्णयन, प्रक्रिया के परिणाम होते हैं। निर्णयन प्रक्रिया की तीन विशेषताएँ होती हैं-

1. कोई भी निर्णयन लक्ष्योन्मुख होता है। निर्णयन मुख्यत: किसी प्रयोजन को पूरा करने हेतु किया जाता है।
2. निर्णयों की एक क्रमिक श्रृंखला होती है, कोई भी निर्णय अकेला नहीं लिया जाता है।

3. कोई भी निर्णय किसी विशेष अवधि में होता है, जिससे सहगामी घटनाएँ परिणाम को प्रभावित करती हैं।

निर्णयन का शाब्दिक अर्थ अन्तिम परिणाम तक पहुँचने से लगाया जाता है, जबकि व्यावहारिक दृष्टिकोण से इसका आशय निष्कर्ष पर पहुँचने से होता है।

- **किलियन्स** के अनुसार, "चुने हुए विकल्पों में से किसी एक के सम्बन्ध में निर्णय करना ही निर्णयन है।"
- **जॉर्ज आर. टेरी** के अनुसार, "नीतिगत निर्णय किसी एक कसौटी पर आधारित दो या दो से अधिक सम्भावित विकल्पों में से एक का चयन है। नौतिगत निर्णयन में रचनात्मक दृष्टिकोण का परिणाम बताया जाता है। नीतियों के क्रियान्वयन में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। निर्णय प्रायः नीति नियम, आदेश अथवा निर्देश के रुप में व्यक्त होते हैं। सामान्यतः निर्णय अधिक जटिल और कठिन होते हैं। नीतिगत निर्णय किसी विषय से सम्बन्धित होते हैं। जटिलतम तथा परस्पर गुंथी हुई परिस्थितियों या नीतियों में से क्षमतानुसार एक श्रेष्ठ विकल्प को चुनना नीतिगत निर्णयन का परिणाम बताया जाता है।

www.studiestoday.com

नीतिगत निर्णयन के प्रमुख लक्षण

- विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का चयन करने की प्रक्रिया है।
- यह एक बौद्धिक कार्य है।
- निर्णयन नकारात्मक भी हो सकता है अर्थात् निर्णय नहीं लेना भी एक निर्णयन है।
- निर्णयन वह केन्द्र विन्दु है जहाँ योजनाओं, नीतियों तथा उद्देश्यों का सही चयन किया जाता है।
- यह शिक्षाविद् अनुभवी समूहों की एक सार्वभौमिक पहचान है।
- यह विवादों के समाधान की प्रक्रिया के रूप में काम करता है। एक मूल रुप से मानवीय प्रक्रिया है।

नीतिगत निर्णयन को प्रभावित करने वाले कारक

- नीतिगत निर्णयनकर्ताओं के दृष्टिकोण .
- नीतिगत निर्णयन लेने की परिस्थितियाँ
- नीतिगत निर्णयन के मापदण्ड या कसौटियाँ • समय
- नीतिगत निर्णयन से प्रभावित वर्ग या समूह .
- नीतिगत निर्णयन के साधन
- नीतिगत निर्णयन से सम्बन्धित समस्याएँ एवं अवसर

नीति कार्यान्वयन की योजना बनाना

नीतियों को प्रभावी तरीके से लागू करने हेतु योजना को क्रियान्वित किया जाता है। योजना क्रियान्वयन हेतु समयबद्ध निरन्तर प्रयासों की आवश्यकता होती है। संविधान के प्रावधानों के अनुसार राष्ट्र पर शिक्षा के लिए लोक नीति का निर्माण तथा इसे देश भर में क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व है। वर्ष 1948 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1962-63 कोठारी आयोग, शिक्षा नीति (1986), तथा संशोधित शिक्षा नीति 1992 द्वारा भारत में शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक सुधार किए गए। शिक्षा आयोग का गठन शिक्षा के उद्देश्यों को कभी पूरा नहीं कर सकता है, क्योंकि नीतियों का क्रियान्वयन समान रुप से आवश्यक है। हमने शिक्षा में लोक नीतियों के क्रियान्वयन की कठिनाइयों का अनुभव प्राप्त किया है। अनेक कारणों से योजनाएँ निर्धारित समय के अन्दर लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाती हैं तथा आगे इसी नीति के विस्तार में यही परिणाम रहा है।

प्रारम्भिक शिक्षा की सार्वभौमीकरण की अवधारणा काफी पहले स्वीकार की गई थीं, परन्तु आज तक प्रारम्भिक शिक्षा को सार्वभौमिकृत नहीं किया जा सका है। इसी सम्बन्ध में शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 में प्रारम्भिक शिक्षा को बच्चों के लिए एक अधिकार बनाना हमारे देश के लिए महत्त्वपूर्ण विकास में से एक माना जाता है। शिक्षा का अधिकार का यह अधिनियम, 2009 भारत सरकार द्वारा वास्तविक रुप से 1 अप्रैल, 2010 से लागू किया गया। अत: किसी शैक्षिक नीति का क्रियान्वयन अनेक कारकों पर निर्भर करता है, जैसे-कार्य योजना का निर्माण, राजनीतिक समर्थन की प्राप्ति, वित्तीय प्रावधान तथा सम्बन्धित हितधारकों की सहभागिता।

कार्य योजना का निर्माण

शिक्षा पर नीतियों के क्रियान्वयन के लिए कार्ययोजना का निर्माण नीतियों के उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में पहला कदम माना जाता है। कार्ययोजना, योजना को मूर्तरुप प्रदान करने तथा क्रियान्वयन के लिए एक प्रभावी रणनीति है। यह विभिन्न हितधारकों की भूमिका तथा उत्तरदायित्वों को परिभाषित करती है; जैसे-स्थानीय इकाइयाँ, समूहों, व्यक्तियों तथा लाभार्थियो। यह शिक्षा नीतियों के क्रियान्वयन हेतु विभिन्न स्तरों पर वित्तीय प्रावधानों को भी सम्मिलित करती है। की गई है; जैसे-कुछ मुद्दों के समाधान हेतु विस्तृत कार्ययोजना तैयार कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों एवं शिक्षक के अनुपात को सुनिश्चित करना, शिक्षक प्रशिक्षण, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना, बाल केन्द्रित शिक्षण, विद्यालयों में अनुपस्थिति की समस्या का समाधान, शिक्षकों में समुदाय की सहभागिता को सुनिश्चित करना बच्चों की सुरक्षा एवं इनके अधिकारों को सुनिश्चितता, हितधारकों के लिए जागरुकता कार्यक्रम तथा प्रशिक्षण की योजना, अधिनियम के विभिन्न स्तरों पर इसके क्रियान्वयन के पक्षों की प्रतिपुष्टि एवं पुनर्निरीक्षण आदि। अतः देश में किसी शैक्षिक नीति के क्रियान्वयन के लिए प्रभावी तथा उचित कार्ययोजना का निर्माण आवश्यक है।

राजनीतिक समर्थन तथा वित्तीय प्रावधान

राजनीतिक समर्थन तथा वित्तीय प्रावधान शैक्षिक नीतियों के क्रियान्वयन के लिए महत्त्वपूर्ण कारक है। किसी नीति के क्रियान्वयन के लिए राजनीतिक इच्छा शक्ति महत्त्वपूर्ण है। विशेषकर एक लोकतान्त्रिक देश में राजनीतिक समर्थन एक प्रभावकारी कारक माना जाता है। सामान्यतः राजनीतिक दलों के बीच वैचारिक मतभेद भी होते हैं। राजनीतिक दल अपनी प्राथमिकताओं के आधार

www.studyedupeducation.com

पर कार्य करते हैं। राजनैतिक मतभेद शैक्षिक नीतियों के क्रियान्वयन में बाधक हैं। अनेक मामलों में समान रुप से देखा गया है कि नई सरकार पूर्ववर्ती सरकार की नीतियों को कायम रखती है।

समर्थन तथा वित्तीय प्रावधान भी शैक्षिक नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु समान रूप से उत्तरदायी माना जाता है। वित्तीय प्रावधानों के अभाव में शैक्षिक नीतियों के क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न होती है। इससे नीतियाँ बुरी तरह प्रभावित होती हैं। कभी-कभी शैक्षिक नीतियों के क्रियान्वयन के लिए अल्प राशि प्राप्त करती है। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि नीतियों के लिए आवण्टित राशि में विलम्ब होता है। ये सभी नीतियों के क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न करती हैं। अतः यह स्पष्ट है कि राजनीतिक समर्थन एवं वित्तीय साधन (प्रावधान) शैक्षिक नीतियों के क्रियान्वयन के प्रमुख भाग हैं।

हितधारकों की सहभागिता

किसी भी शैक्षिक नीति के हितधारक इसके क्रियान्वयन में बहुत निर्णायक भूमिका निभाते हैं। नीति का क्रियान्वयन करना, आवश्यक सुविधाओं को प्रदान करना, लाभार्थियों को सशक्त करना शिक्षा नीति का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के अन्तर्गत अनेक हितधारक शामिल किए गए हैं; जैसे—केन्द्र, राज्य सरकारें, स्थानीय इकाइयाँ, राज्य शैक्षणिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषदें, प्रत्यक्ष प्रशासन, ग्राम पंचायत, विद्यालय, शिक्षक, विद्यार्थी, माता-पिता, समुदाय आदि। इस अधिनियम में यद्यपि मुख्य लाभार्थी विद्यार्थी हैं, परन्तु बहुत से हितधारक अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए सम्मिलित हैं। एक भी हितधारक की सहभागिता के बिना शैक्षिक नीतियों का क्रियान्वयन समुचित रुप से नहीं हो सकता है, इसलिए यह शैक्षिक नीतियों के क्रियान्वयन का एक महत्त्वपूर्ण कारक है।

नीतियों के प्रभाव का आकलन (Policy Impact Assessment)

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत ने समय-समय पर शिक्षा को बढ़ावा देने, गुणवत्ता विकास को प्रोत्साहित करने हेतु वर्ष 1968, 1986 तथा 1992 में शिक्षा नीतियों को लागू किया। इसके अतिरिक्त सफल कार्यान्वियन की समीक्षा हेतु समितियों का भी गठन किया। शिक्षा नीतियों में शामिल विभिन्न लक्ष्यों ने काफी हद तक सकारात्मक परिणाम दिया है।

उल्लेखनीय है कि नीतियों ने पाठ्यक्रमों में परिवर्तन कर व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ाने, शिक्षा के स्तर को बढ़ाने, कक्षा में विद्यार्थियों की भागीदारी को बढ़ाने, शिक्षण में लैंगिक अन्तराल को कम करने, औद्योगिक एवं तकनीकी शिक्षा की उपयोगिता को बढ़ाने, शिक्षण का विकास कर मानव का गुणवत्तापूर्ण बौद्धिक विकास करने, शिक्षण को रुचिकर बनाने हेतु रेडियो, दूरदर्शन, ऑडियो, वीडियो, कम्प्यूटर के प्रयोग आदि के द्वारा तथा अन्य उपयोगी कारकों के निर्धारण द्वारा शिक्षण को प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया है। इतना ही नहीं खुला विश्वविद्यालय, वोकेशनल पाठ्यक्रम जैसे अध्ययनों को प्रोत्साहित कर शिक्षण की कौशलता को बढ़ावा देने का प्रयास किया है।

इसके परिणामस्वरुप भारत की साक्षरता दर में वृद्धि हुई है। वर्ष 1951 में भारत की साक्षरता दर जहाँ 18.33% थी, जो वर्ष 2011 में बढ़कर 73.0% हो गई है। इसके साथ ही वर्ष 2017-18 के अनुसार सरकार द्वारा शिक्षा पर निरन्तर व्यय किया जा रहा है। इससे विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई है तथा विद्यार्थियों की कौशलता में भी वृद्धि हुई है, जिससे तकनीकी शिक्षा को भी बढ़ावा मिला है। शिक्षा की गुणवत्ता ने बौद्धिकता के साथ स्वरोजगार को भी जन्म दिया।

इसके अतिरिक्त शिक्षा में असमानता पाई जाती है। इसमें शैक्षिक अवसर में असमानता, शैक्षिक प्राप्ति में असमानता, व्यावसायिक शिक्षा में असमानता प्रमुख हैं। इसमें भारत की शिक्षा नीति ने शैक्षिक अवसरों में असमानता को कम करने पर ध्यान केन्द्रित किया है, जिसका निहितार्थ होता है विद्यार्थियों को उनकी योग्यता अनुरुप संसाधन उपलब्ध कराना। इसमें तो सफलता मिली है जबकि शेष असफल सिद्ध हुए हैं। इस सन्दर्भ में अमर्त्य सेन ने बताया है कि "देश की शिक्षा में जो बुनियादी समस्या मौजूद है, वह है प्राथमिक शिक्षा की तुलना में उच्च शिक्षा को महत्त्व देना। इससे अपेक्षित परिणाम नहीं निकलते हैं। शिक्षा नीति के प्रभावस्वरूप ही विद्यालय में पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों की दर में कमी आई है।
शिक्षा नीति ने काफी हद तक शिक्षण की गुणवत्ता और कौशलता को प्रभावी बनाया है, किन्तु निहित कमियों को दूर करने की अभी नितान्त आवश्यकता है। तभी बेहतर गुणवत्तापूर्ण शिक्षण की व्यवस्था पूरी हो पाएगी और भारत गुणवत्तापूर्ण मानव संसाधन वाला राष्ट्र बन पाएगा।

www.studyeducation.com

अनुवर्ती नीति-चक्र(Subsequent Policy Cycles)

अनुवर्ती नीति-चक्र: एक प्रक्रिया है, जो श्रृंखलाबद्ध रूप से विभिन्न स्तरों पर सम्पन्न होता है। नीति निर्माणकर्ता नीति सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन कर नीतियों को लागू करते हैं तथा ऐसी नीतियों की सफलताओं से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों का अध्ययन करते हैं। यह प्रक्रिया निरन्तर होती रहती है। अनुवर्ती नीति-चक्र के अन्तर्गत विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। समस्याओं का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है, साथ ही उसके परिणामों को ज्ञात किया जाता है। नीति का मूल्यांकन स्तर नीति का पहला स्तर माना जाता है। अनुवर्ती नीति-चक्र विभिन्न स्तरों से होकर गुजरता है

- **एजेण्डा सेटिंग** इसके अन्तर्गत विभिन्न समस्याओं की पहचान की जाती है, साथ ही यह भी ज्ञात किया जाता है कि कौन-सा विषय सबसे महत्त्वपूर्ण है जिस पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त एजेण्डा सेटिंग के अन्तर्गत समस्याओं की प्रकृति का भी व्यापक विश्लेषण किया जाता है।
- **नीति सूत्रीकरण** इसके अन्तर्गत उद्देश्यों को ज्ञात किया जाता है, लागत की पहचान की जाती है, समाधान प्रभावों को ज्ञात किया जाता है और समाधान सम्बन्धित सूचियों एवं नीतियों के साधनों का चयन किया जाता है।
- **तर्कसंगत या न्यायसंगत नीति** यह सुनिश्चित किया जाता है कि चयनित नीति वैधानिक रूप से अभिप्रमाणित है या नहीं। बिना कार्यपालिक अभिप्रमाणित नीतियाँ न्यायसंगत नहीं होती हैं। इसके अतिरिक्त इच्छा समूहों द्वारा भी समर्थित होना चाहिए। नीतियों की स्वीकृति सामूहिक रुप से हो तथा सभी की सहमति आवश्यक होती है।

- **क्रियान्वयन** इस स्तर में नीतियों के क्रियान्वयन हेतु कार्यरत् या स्थापित संगठन द्वारा उत्तरदायी का निर्वहन किया जाता है। साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि संगठन के पास नीतियों को क्रियान्वित करने हेतु पर्याप्त संसाधन विद्यमान हैं (पूँजी, कर्मचारी वैधानिक अधिकृत)। इसके बाद नीतियों के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक कदम उठाए जाते हैं।
- **मूल्यांकन** इसके अन्तर्गत नीतियों का व्यापक मूल्यांकन किया जाता है। इस तथ्य का आकलन किया जाता है कि कौन-सी नीति सफल रही और किस नीति का निर्णय सही रहा है। यदि इसे सही रुप से क्रियान्वित किया गया है, तो नीतियों का परिणाम जानना मूल्यांकन का प्रमुख हिस्सा माना जाता है।
- **नीति की देख-रेख, सफलता या समापन** इसके अन्तर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि नीतियों को निरन्तर चालू रखा जाए या समाप्त कर दिया जाए या फिर इसमें कुछ आवश्यक संशोधन किए जाएँ।

इस प्रकार अनुवर्ती नीति-चक्र एक उपयोगी साधन माना जाता है। यह काफी आसान एवं समझने योग्य चक्र है। इसे सभी क्षेत्रों राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक प्रणाली में लागू किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत प्रवाही नीति निर्माण पर विशेष बल दिया गया है, जो निरन्तर गतिमान होती है।

www.studyofeducation.com

शिक्षा में अर्थशास्त्र की संकल्पना

शिक्षा अर्थशास्त्र का परिचय (Introduction of Educational Economics)

शिक्षा अर्थशास्त्र अध्ययन विश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा शिक्षा पर आर्थिक संसाधनों के सूक्ष्म प्रभाव का भी वर्णन करता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने तीव्र गति से विकास किया है। प्रत्येक देश उच्च तकनीकी के द्वारा श्रम उत्पादकता के क्षेत्र में कुशलता प्राप्त करना चाहता है। इस स्थिति में यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षा के विकास में आर्थिक कारकों के योगदान की विस्तृत चर्चा की जाए और उनका प्रभावी मूल्यांकन किया जाए। शिक्षा अर्थशास्त्र यह कार्य करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सर्वप्रथम वर्ष 1934 में चीन में शिक्षा के आर्थिक दृष्टिकोण पर एक लेख प्रकाशित किया गया, इसके अन्तर्गत शिक्षा और उसकी आर्थिक बाधाओं के बीच द्वन्द्वात्मक संघर्षों पर विस्तृत चर्चा की गई। इसमें शैक्षिक कार्यक्रमों तथा शिक्षा के आर्थिक उपागमों के पारस्परिक सम्बन्धों की व्यावहारिक रुपरेखा स्पष्ट की गई।

तत्पश्चात् पश्चिमी विद्वान् **डेविड रिकार्डो** ने शिक्षा के क्षेत्र में निवेश और वित्त पोषण का मूल विचार प्रस्तुत किया। सोवियत संघ में सर्वप्रथम शिक्षा अर्थशास्त्र को एक अलग विषय के रूप में मान्यता दी गई। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री अमेरिकी विद्वान् **'शुल्ज'** ने भी अपने **'मानव पूँजी सिद्धान्त'** के अन्तर्गत शिक्षा अर्थशास्त्र को एक अलग विषय के रुप में स्वीकार किया है।

शिक्षा में लागत लाभ तथा प्रभावी विश्लेषण

शिक्षा में उसकी गुणवत्ता की माप या लागत लाभ अथवा उसके लागत के प्रभावी आकलन हेतु लागत लाभ विश्लेषण बनाम लागत प्रभावी विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होता है। इससे शिक्षा जगत में संचालित प्रमुख नीतियों, कार्यक्रमों, परियोजनाओं में किए गए धन का आवण्टन तथा उसके परिणाम की जानकारी लागत लाभ विश्लेषण से होती है, वहीं लागत प्रभावी विश्लेषण अत्यन्त सूक्ष्म स्तर पर प्रभावी मूल्यांकन एवं आकलन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है।

अतः इनका विस्तृत विश्लेषण अलग-अलग निम्न प्रकार है-

शिक्षा में लागत लाभ विश्लेषण

शिक्षा में लागत लाभ विश्लेषण उपयोगितावादी दृष्टिकोण पर आधारित एक ऐसी संकल्पना है, जिसके अन्तर्गत शिक्षा में लागत और उसके मूल्यांकन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है, बल्कि उसके परिणाम पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता है। यह पद्धति सामाजिक लाभ को उद्देश्य के रूप में स्वीकार करती है।

www.studyoreducation.com

इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं-

- यह विश्लेषण, शिक्षा की उत्पादकता बढ़ाने हेतु साधन और साध्यों के बीच भेदों को कम करने में सहायता करती है।
- यह शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करने की लागतों को कम करके उससे होने वाले लाभों पर ध्यान केन्द्रित करती है।
- यह किसी विशेष समूह की शैक्षणिक आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए निर्धारित मानदण्डों को प्रस्तुत करती है।
- लागत लाभ विश्लेषण का एक लाभ यह है कि यह विकेन्द्रीकृत निर्णय करने का अवसर प्रदान करती है।
- यह शिक्षा परियोजनाओं की लागतों और लाभों की गणना करने के लिए मानदण्ड प्रस्तुत करती है।
- यह शिक्षा के सन्दर्भ में वर्तमान तथा भविष्य दोनों के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। इसके द्वारा शिक्षा पर विभिन्न आर्थिक कार्यक्रमों के व्यावहारिक प्रभाव का मूल्यांकन किया जा सकता है।
- शिक्षा योजनाओं की लागतों और उसके प्रभावों की गणना के लिए यह एक अलग प्राधिकरण संस्था की मान्यता को स्वीकार करता है।

- लागत प्रभाव विश्लेषण शिक्षा योजनाओं के उद्देश्यों के सन्दर्भ में आदशात्मक स्वरुप अपनाता है, किन्तु इन उद्देश्यों की वांछनीयता की प्राप्ति और उनका मूल्यांकन व्यावहारिक तरीके से करता है।
- लागत लाभ विश्लेषण शिक्षा योजनाओं की वांछनीयता का मूल्यांकन करने का एक व्यावहारिक ढंग है।
- यह विश्लेषण शिक्षा के क्षेत्र द्वारा अधिकतम सामाजिक-आर्थिक प्रभाव प्राप्ति की अवधारणा पर कार्य करता है।
- यह शिक्षा योजनाओं के लाभों को प्राप्त करने के लिए 'अनुकूलतम साधन आवण्टन' (Optimum Resource Allocation) की अवधारणा पर कार्य करता है।
- इस विश्लेषण के द्वारा शिक्षा के सामाजिक प्रभाव का मूल्यांकन किया जा सकता है। सुनिश्चित करने
- यह विश्लेषण पूर्व मान्यता रुप में यह स्वीकार करता है कि शिक्षा योजनाओं के सन्दर्भ में उनकी लागत की अपेक्षा उनसे उत्पन्न प्रभाव अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

शिक्षा में लागत प्रभावी विश्लेषण

लागत प्रभावी विश्लेषण को प्रायः लागत लाभ विश्लेषण का ही अत्यन्त सरलीकृत रूप माना जाता है। यह किसी शिक्षा योजना के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रयोग में लाए गए विकल्पों के मूल्यांकन की विधि है। इसके अनुसार सबसे अधिक बेहतर वह विकल्प माना जाता है, जो लागत के निर्धारित स्तर के लिए अधिकतम प्रभाविकता उत्पन्न करता है या प्रभाविकता के नियत स्तर के लिए न्यूनतम लागत उत्पन्न करता है।

यह न केवल प्रस्तावित वैकल्पिक नीतियों की तुलना करने के लिए उपयोगी है, बल्कि विद्यमान नीतियों का मूल्यांकन करने के लिए भी उपयोगी है।

रोजी और फ्रीमैन के अनुसार, "लागत प्रभाविकता विश्लेषण अपने परम्परागत रूप में लाभ लागत विश्लेषण के सदृश्य है, सिर्फ इसके कि मुद्राकरण केवल लागत के लिए आवश्यक है, जबकि लाभ प्रत्यक्ष परिणाम इकाइयों में व्यक्त किए जाते हैं।"

प्रमाविकता का मापन करना सरल कार्य नहीं है, क्योंकि प्रभाव की मात्रा निधारित करना कठिन है। उदाहरण के लिए शिक्षा नीतिया, पर्यावरण सम्बन्धी नीतियों का परिमाणात्मक प्रभाव मापना सरल नहीं है। हम साक्षरता की माप कर सकते है, पातु नागरिकता के में ज्ञानोदय का स्तर नहीं माप सकते हैं। हम चिकिताक-रोगी अनुपात अश्या अनुपात बिस्तरों की संख्या बता सकते है, परन्तु स्वास्थ्य पर उनके वास्तविक प्रभाव का आकलन सरलता से नहीं कर सकते हैं।

इस विश्लेषण की निम्नलिखित विशेषताएँ है-

- यह विश्लेषण शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त विकल्या की प्रभावशीलता का आकलन करता है।
- यह विश्लेषण समाज के किसी वर्ग विशेष की शिक्षा सम्बन्धी करतो तथा उनकी पूर्ति के लिए निश्चित मानदण्ड प्रस्तुत करता है।
- यह विश्लेषण शिक्षा के सामाजिक आदर्श की प्राप्ति व्यावहारिक विधि के द्वारा करता है।

www.studyofeducation.com

- यह विश्लेषण राष्ट्र के विकास में समाज के सभी वर्गों का योगदान के लिए कुछ निश्चित मानदण्डों को प्रस्तुत करता है तथा इन मानदण्डों को व्यावहारिक वांछनीयता का भी मूल्यांकन करता है।
- 'लागत लाभ विश्लेषण प्रक्रिया के समान ही लागत-प्रभावी विश्लेषण भी विकेन्द्रीकरण निर्णय करने का अवसर प्रदान करता है।
- यह विश्लेषण, पूर्व मान्यता के रुप में यह स्वीकार करता है कि शिक्षा के सामाजिक लाभ के रुप में उसकी लागत की अपेक्षा उससे प्राप्त होने वाले लाभ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।
- वर्तमान और भविष्य के लिए शिक्षा योजनाओं की रूपरेखा तैयार करने का कार्य 'लागत प्रभावी विश्लेषण' के द्वारा किया जाता है।
- इसके अन्तर्गत यह शिक्षा योजनाओं के व्यावहारिक प्रभावों का आकलन और मूल्यांकन करता है।
- यह 'लागत लाभ विश्लेषण से वृहद संकल्पना है, क्योंकि यह शिक्षा परियोजनाओं की लागतों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उससे उत्पन प्रभावों को भी अपनी विषय-वस्तु बनाता है।

शिक्षा का आर्थिक प्रतिफलन (Economic Returns of Education)

www.studyofeducation.com

शिक्षा अर्थशास्त्र में मानव पूँजी की प्रासंगिकता और उसके संकेतन का विवाद हमेशा से बना रहा है। शिक्षाशास्त्रियों का एक वर्ग उच्च शिक्षा द्वारा मानव पूंजी के प्रतिफलन को स्वीकार करता है तथा दूसरा वर्ग **मानव पूँजी के संकेतन (Signaling of Human Capital)** को स्वीकार करता है।

इस प्रकार शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में विद्वानों के दो वर्ग बन गए हैं, जो दो भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं। ये सिद्धान्त **संकेतन सिद्धान्त (Signaling Theory)** और **मानव पूँजी सिद्धान्त (Human Capital Theory**) हैं। स्पेन्सर के द्वारा इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

संकेतन सिद्धान्त (Signalling Theory

इस सिद्धान्त के अनुसार उच्च शिक्षा मानव पूँजी का केवल संकेतन करती है। यह सिद्धान्त यह स्वीकारता है कि उच्च शिक्षा द्वारा मानव पूँजी को बढ़ाकर, श्रम-उत्पादकता को नहीं बढ़ाया जा सकता है क्योंकि यह केवल मानव में निहित पूँजी का संकेतन करती है तथा यह मानव पूँजी ही विकसित होकर उच्च श्रम उत्पादकता का रुप ग्रहण करती है। संकेतन सिद्धान्त को मानने वाले विद्वानों का मानना है कि जब कोई व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करता है और तत्पश्चात् कोई डिग्री प्राप्त करता है तो यह डिग्री इस बात का संकेत है कि वह व्यक्ति श्रम बाजार में उच्च उत्पादक क्षमता रखता है।

संकेतन सिद्धान्त के समर्थक अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए **'शीपस्किन प्रभाव' (Sheepskin Effect)** की चर्चा करते हैं। इसके अनुसार उच्च शिक्षा द्वारा प्राप्त प्रमाण-पत्र शिक्षा प्राप्ति के बाद एक प्रभावी उपागम के रूप में कार्य करता है। यह इस बात का संकेत करता है कि उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति की उत्पादन क्षमता, उन सभी व्यक्तियों से अधिक होगी, जिन्होंने इस प्रकार की उच्च शिक्षा और उसका प्रमाण-पत्र प्राप्त नहीं किया है।

यह सिद्धान्त उच्च शैक्षणिक डिग्री को ही योग्यता का एकमात्र आधार मानता है। इसके अनुसार वह व्यक्ति जो उच्च शिक्षा प्राप्ति में कई वर्ष व्यतीत करता है, किन्तु डिग्री प्राप्त करने में असफल रहता है, वह श्रम बाजार में अधिक उत्पादन क्षमता नहीं रखता। इसी प्रकार जो व्यक्ति जितनी जल्दी अपने शैक्षणिक कोर्स को पूरा कर डिग्री प्राप्त करता है वह उतना ही अधिक उत्पादन क्षमता रखता है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति अपने शैक्षणिक कोर्स के दौरान जितना कम असफल होता है, वह उतना ही अधिक उत्पादन क्षमता रखता है। स्पष्ट है कि शिक्षा का संकेतन सिद्धान्त उच्च शिक्षा प्राप्ति के दौरान व्यतीत किए गए वर्षों से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। यदि अन्तिम निष्कर्ष के रूप में डिग्री की प्राप्ति नहीं हुई हो। इस प्रकार यह केवल उच्च शिक्षा में प्राप्त डिग्री को ही महत्त्वपूर्ण मानता है।

मानव पूँजी सिद्धान्त (Human Capital Theory)

सर्वप्रथम **एडम स्मिथ (1776)** द्वारा इस सिद्धान्त पर चर्चा की गई थी। उसके बाद **अल्फ्रेड मार्शल (1890)**, **मिन्सर (1958)**, **शुल्ज (1961)** तथा **बेकी (1975)** ने इसे व्यवस्थित रुप में स्थापित किया। यह सिद्धान्त शिक्षा अनुसन्धान और नीति निर्धारण कारकों का विश्लेषण आर्थिक सन्दर्भों में करता है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त शिक्षा, आर्थिक संवृद्धि तथा सामाजिक विकास के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या और मूल्यांकन करता है।

यह सिद्धान्त शिक्षा को पूँजी निवेश (Capital Investment) के रुप में स्वीकार करता है। उच्च शिक्षा से सम्बन्धित अनुसन्धान एवं विकास कार्यक्रमों, नीतियों, प्रोग्रामों आदि के द्वारा श्रम बाजार उत्पादकता बढ़ती है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में किया गया आर्थिक निवेश अन्ततः आर्थिक संवृद्धि के रुप में सामने आता है। प्रारम्भ में शिक्षा की मात्रा और उसमें किए गए आर्थिक निवेश को ही उच्च उत्पादन क्षमता का पर्याय माना जाता था, किन्तु आधुनिक मान्यता शिक्षा की मात्रा और आर्थिक निवेश के साथ-साथ शिक्षा की गुणवत्ता को भी उच्च श्रम उत्पादकता के मानदण्ड के रुप में स्वीकार किया जाता है।
उदाहरण के लिए भारत में IIT से पास इंजीनियरिंग डिग्री धारकों को अन्य की तुलना में उच्च उत्पादकता युक्त माना जाता है, क्योंकि यह स्वीकार किया जाता है कि IIT की शैक्षणिक गुणवत्ता अन्य कॉलेजों से अधिक है।
अल्फ्रेड मार्शल ने औद्योगिक प्रशिक्षण को राष्ट्रीय निवेश (National Investment) के रुप में स्वीकार किया है। मानव पूँजी सिद्धान्त यह स्वीकार करता है कि उच्च शिक्षा का सीधा सम्बन्ध मानव पूँजी दक्षता से होता है।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने से मानव पूंजी की दक्षता में वृद्धि होती है जोकि उच्च उत्पादन क्षमता तथा आर्थिक संवृद्धि के अन्तिम निष्कर्ष के रुप में सामने आती है। यह सिद्धान्त मानता है कि जब भी कोई व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त करता है, तो उसमें निहित मानव पूँजी की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है जिसके कारण वर, व्यक्ति स्वयं और समाज, दोनों के प्रति एक सकारात्मक और प्रभावी विचारों का प्रतिनिधित्व करने लगता है जिसका परिणाम यह होता है कि वह समाज के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास में प्रमुख योगदान देता है।

www.studyofeducation.com

जो व्यक्ति शिक्षा अनुसन्धान के क्षेत्र में जितना अधिक समय देता है, वह अर्थव्यवस्था में भी उतना ही अधिक योगदान देने के योग्य हो जाता है। वर्तमान समय में उच्च शिक्षा तथा अनुसन्धान एवं विकास कार्यक्रमों को किसी भी देश की आर्थिक संवृद्धि की धुरी समझा जाने लगा है। नैनो तकनीकी, जैव प्रौद्योगिकी, अन्तरिक्ष प्रौद्योगिक, आर्टिफिशियल इण्टेलीजेन्स–ये सभी वर्तमान आधुनिकता पूँजी सिद्धान्त शिक्षा की आवश्यकता के रुप में स्वीकार किए जा रहे हैं। मानव और उससे उत्पन्न आर्थिक प्रभावों के सहसम्बन्धों की व्याख्या करता है।

यह इस तथ्य का भी निर्धारण करता है कि किसी भी समाज में शिक्षा के निवेश का आधार क्या होना चाहिए और शिक्षा पर किया गया निवेश किस प्रकार किसी भी समाज के सामाजिक-आर्थिक स्वरुप को बदल सकता है। विकसित देशों में शिक्षा के क्षेत्र में अनुसन्धान पर एक निश्चित मात्रा में निवेश किया जाता है तथा सकल घरेलू उत्पाद के एक निश्चित प्रतिशतता के रुप में वित्त की व्यवस्था की जाती है, क्योंकि पश्चिमी देश यह स्वीकारते हैं कि शिक्षा पर किया गया कोई भी निवेश अन्ततः देश में आर्थिक संवृद्धि लाएगा।

संक्षेप में, मानव पूँजी सिद्धान्त इस अवधारणा को स्वीकारता है कि उच्च शिक्षा, उच्च मानव पूँजी को जन्म देती है और उच्च मानव पूँजी उच्च आर्थिक विकास को जन्म देता है। इस मानव पूँजी सिद्धान्त को चक्रीय अवधारणा के माध्यम से समझा जा सकता है, जो यह स्पष्ट करता है कि उच्च शिक्षा में शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमो, नीतियों के रुप में किया गया निवेश देश की अर्थव्यवस्था में किस प्रकार सहायक होता है। यह निवेश तथा आर्थिक संवृद्धि का सम्बन्ध एक चक्र के रुप में चलता रहता है, जिसका चित्रण निम्न प्रकार है-

www.studyofeducation.com

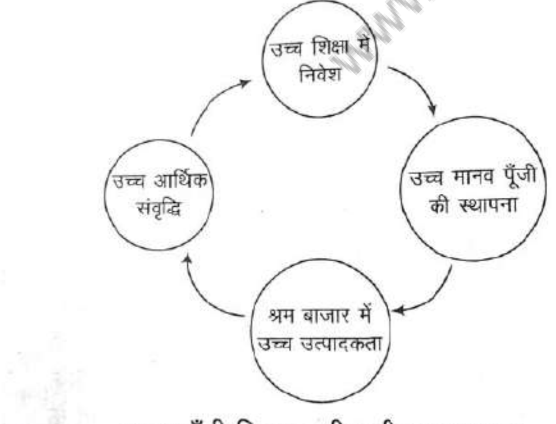

मानव पूँजी सिद्धान्त की चक्रीय अवधारणा

इसे निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है

संकेतन सिद्धान्त बनाम मानव पूँजी सिद्धान्त

संकेतन सिद्धान्त बनाम मानव पूँजी सिद्धान्त शिक्षा आर्थिक प्रतिफलन से सम्बन्धित दो भिन्न अवधारणाएँ हैं, जो उच्च शिक्षा में मानव पूँजी के संकेतन तथा मानव पूँजी के उत्पत्ति एवं विकास को सन्दर्भित करता है।

- संकेतन सिद्वान्त, शिक्षा जगत में उच्च शिक्षा में मानव पूँजी का केवल संकेतन करता है, वहीं मानव पूँजी सिद्धान्त शिक्षा जगत में अनुसन्धान और नीति निर्धारण कारकों का विश्लेषण आर्थिक सन्दर्भो में करने के साथ आर्थिक संवृद्धि तथा सामाजिक विकास के पारम्परिक सम्बन्धों की व्याख्या और मूल्यांकन करती है।
- संकेतन सिद्धान्त केवल मानव में निहित पूँजी का संकेतन करता है, जो विकसित होकर उच्च श्रम उत्पादकता का रुप ग्रहण करती है। जबकि मानव पूँजी सिद्धान्त शिक्षा को पूँजी निवेश के रुप में स्वीकार करती है, जो अनुसन्धान एवं विकास, कार्यक्रमों, नीतियों, प्रोग्रामों आदि के द्वारा श्रम बाजार में उत्पादकता बढ़ाती है।
- संकेतन सिद्धान्त के समर्थक विद्वान् यह मानते हैं कि जब कोई व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करता है तत्पश्चात् कोई डिग्री प्राप्त करता है, तो वह इस बात का संकेत करता है कि डिग्रीधारी व्यक्ति श्रम बाजार में उच्च उत्पादक क्षमता रखता है। इसके विपरीत मानव पूँजी सिद्धान्त के समर्थक विद्वान् का मानना है कि उच्च शिक्षा का सीधा सम्बन्ध मानव पूँजी दक्षता से होता है। जिसमें औद्योगिक प्रशिक्षण, कार्यक्रम प्रमुख पूँजी निवेश होते हैं।
- संकेतन सिद्धान्त यह मानता है, कि उच्च शिक्षा, मानव पूँजी को बढ़ाकर श्रम उत्पादकता नहीं बढ़ाती बल्कि केवल उसका संकेतन करती है, जबकि मानव पूँजी सिद्धान्त यह मानता है कि उच्च शिक्षा, उच्च मानव पूँजी को जन्म देती है, जो उच्च आर्थिक विकास को जन्म देता है।
- संकेतन सिद्धान्त केवल उच्च शैक्षणिक डिग्री को ही योग्यता का एकमात्र आधार मानता है, जबकि मानव पूँजी सिद्धान्त इस तथ्य पर भी ध्यान देता है, कि समाज में शिक्षा के निवेश का आधार क्या होना चाहिए तथा शिक्षा पर किया गया निवेश किस प्रकार किसी भी समाज के सामाजिक व आर्थिक स्वरुप को बदल सकता है।

इस प्रकार यह पाया जाता है, कि संकेतन सिद्वान्त आर्थिक विकास में योगदान हेतु केवल व्यक्ति के उच्च शैक्षणिक डिग्री को महत्त्व देता है जबकि मानव पूँजी सिद्धान्त, शैक्षणिक दक्षता, शिक्षा निवेश के आधार तथा निवेश के स्वरुप या प्रकार आदि को महत्त्व देता है। अत: वर्तमान डिग्री के साथ दक्षता का होना आवश्यक होता है।

www.studyofeducation.com

शैक्षिक वित्त व्यवस्था की अवधारणा (Concept of Educational Finance)

वर्तमान समय में यह सर्वमान्य रुप से स्वीकार किया जाने लगा है कि शिक्षाशास्त्र, अर्थशास्त्र का विज्ञान है अर्थात् शिक्षा को केवल सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का ही कारक नहीं माना जाता है, बल्कि यह आर्थिक विकास का भी मुख्य कारक है। शैक्षिक वित्त की अवधारणा के अन्तर्गत उन सभी सरकारी और निजी संस्थाओं को शामिल किया जाता है, जो किसी न किसी प्रकार से शिक्षा के लिए वित्त की व्यवस्था करते हैं।

इनके अन्तर्गत सरकार द्वारा बजट में शिक्षा के लिए निर्धारित राशि, विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं; जैसे—विश्व बैंक, यूनेस्को, ओईसीडी आदि तथा विभिन्न राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, गैर-सरकारी संस्थाओं (NGOs) को शामिल किया जाता है। शिक्षा व्यवस्थाओं को समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचाने के लिए वित्त की आवश्यकता होती है तथा सरकार विभिन्न प्रावधानों के द्वारा इसको

उपलब्ध कराती है। इस अवधारणा के अन्तर्गत कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर भी विचार किया जाता है, जैसे कि बजट की कितनी राशि शिक्षा व्यवस्थाओं पर न्धन किस प्रकार खर्च की जाए। शैक्षणिक अनुसन्धान कार्यक्रमों का वित्तीय किया जाए। निजी क्षेत्र किस प्रकार शैक्षणिक व्यवस्थाओं के उन्नयन में सहायता कर सकती है।

प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा पर किस अनुपात में वित्तीय राशि का आवण्टन किया जाए आदि। शिक्षा वित्त की अवधारणा वित्तीय प्रावधानों के आवण्टन के साथ-साथ इससे उत्पन्न प्रभावों का मूल्यांकन भी करती है।

शिक्षा के क्षेत्र में वित्त आवण्टन और उसके मूल्यांकन के लिए विश्व बैंक के **'मानव विकास विभाग' द्वारा 'सेवर' (SABER-System Assessment and Bench Marking for Education Results)** नामक एक पहल शुरु की गई है। इस पहल के अन्तर्गत यह जानने का प्रयास किया गया है कि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा स्तर पर जारी बजटीय राशि किस प्रकार शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन कर सकती है तथा यह सामाजिक-आर्थिक विकास में कहाँ तक अपना योगदान दे सकती है।

शैक्षिक वित्त के नीतिगत लक्ष्य

शिक्षा अर्थशास्त्र के अन्तर्गत विद्वानों ने शैक्षिक वित्त व्यवस्था के तीन प्रमुख लक्ष्यों को स्वीकार किया है।

ये लक्ष्य निम्नलिखित हैं-

पर्याप्तता

शैक्षिक वित्त की पर्याप्तता (Adequacy) से तात्पर्य पूँजी की उस मात्रा से है, जिससे सभी छात्रों की उच्च शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित की जा सके। शिक्षा से सम्बन्धित मानक और लक्ष्य प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न होते हैं तथा छात्रों द्वारा इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें उन सभी शिक्षा मानकों के अनुरुप वित्तीय व्यवस्थाएँ उपलब्ध हों। वांछनीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पूँजी पर्याप्तता एक प्राथमिक शर्त है। यही कारण है कि प्रत्येक देश में वहाँ के शैक्षिक लक्ष्यों के अनुरुप बजट में एक निश्चित मात्रा में पूँजी की व्यवस्था की जाती है। उदाहरण के लिए, अफ्रीकी देश बोत्सवाना अपने सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 8% शिक्षा बजट के रूप में रखता है, जबकि दक्षिण अमेरिकी देश अर्जेंटीना अपने सकल घरेलू उत्पाद का 4.6% शिक्षा बजट के रूप में रखता है। भारत में वर्तमान समय में लगभग जीडीपी का 3% शिक्षा बजट के रूप में रखा जाता है।

न्याय संगतता

शिक्षा पूँजी की न्याय संगतता (Equity) से तात्पर्य, सभी तक शिक्षा व्यवस्थाओं की समान पहुँच से है। शिक्षा तक सभी की पहुँच होनी चाहिए। यह व्यक्ति की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति, धर्म, जाति, लिंग आदि के द्वारा निर्धारित नहीं होनी चाहिए। शिक्षा वित्त व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि वह समाज में आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को दूर कर सके, सामाजिक रूप से

www.studyofeducation.com

पिछड़े लोगों को समाज की मुख्य धारा में ला सके, पुरुष और महिला के सम्बन्ध में समाज में व्याप्त 'पुरुष प्रधान समाज की अवधारणा' की समाप्ति कर सके।

वर्ष 2011 में यूनेस्को के तत्वावधान में शिक्षा पर एक उच्च समूह की बैठक थाइलैण्ड के जोमटेन (Jomtien) शहर में आयोजित की गई। इस बैठक में शिक्षा की समान पहुँच को सुनिश्चित करने के लिए जोमटेन घोषणा पत्र जारी किया गया। इसके अन्तर्गत विश्व के सभी देशों से यह आग्रह किया गया कि वे अपने सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product) का कम-से-कम 6% अथवा लोक व्यय (Public Expenditure) का 20% शिक्षा पर खर्च करें। इसके अन्तर्गत यह बताया गया कि वर्तमान समय में शिक्षा की वैश्विक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 16 बिलियन डॉलर की आवश्यकता है। इस राशि के द्वारा समाज के सभी वर्गों तक शिक्षा की समान पहुँच को सुनिश्चित किया जा सकेगा।

दक्षता

शिक्षा वित्त के सन्दर्भ में दक्षता (Eficiency) से तात्पर्य है कि शिक्षा के लिए निर्धारित बजट से प्राप्त शिक्षा इस प्रकार होनी चाहिए कि वह आर्थिक संवृद्धि में योगदान करें। आर्थिक संवृद्धि के साथ शिक्षा का स्तर ऐसा होना चाहिए कि वह वैयक्तिक स्तर पर भी समाज के विकास में योगदान करे। वैयक्तिक स्तर पर यह योगदान सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों के साथ-साथ नैतिक क्षेत्र में भी होना चाहिए। केवल मशीनी शिक्षा की प्राप्ति शिक्षा का लक्ष्य नहीं होना चाहिए। शैक्षिक वित्त की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए कि वह छात्रों को सामाजिक और नैतिक रुप से परस्पर समीप लाए। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि सरकार स्कूलों में ऐसे पाठ्यक्रम की व्यवस्था करें, जिससे छात्रों का नैतिक विकास भी हो सके, साथ ही राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करें जो विश्व के विभिन्न समाजों और संस्कृतियों को परस्पर साथ लाए।

सूक्ष्म और स्थूल स्तर पर शैक्षिक वित्त व्यवस्था

सूक्ष्म और स्थूल (Micro and Macro Levels) स्तर पर शैक्षिक वित्त के विभिन्न स्रोत हैं। शिक्षा के क्षेत्र में वित्त की प्राप्ति मुख्य रुप से तीन स्रोतों से होती है। ये तीन स्रोत हैं—सरकार, फीस के रुप में छात्रों से प्राप्त राशि एवं अन्य। अन्य स्रोतों में उद्योग जगत द्वारा दी गई राशि, दान में प्राप्त राशि, सरकारी पब्लिकेशन स्रोतों से प्राप्त राशि तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा प्राप्त राशि को शामिल किया जाता है।

शिक्षा पर बजटीय व्यवस्था का अधिकतम भाग सरकार द्वारा प्राप्त राशि का होता है। अन्य स्रोतों से प्राप्त धनराशि, कुल राशि का लगभग 10% होता है।से धनराशि हशि प्रथा होता है। इसके अतिरिक्त अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की संकल्पना के कारण सरकार की फीस के रुप में प्राप्त राशि में गिरावट आई है। वर्तमान समय में उच्च शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण आदि की अत्यधिक माँग के कारण सरकारी वित्त व्यवस्था घाटे में जा रही है।

www.studyforeducation.com

उच्च शिक्षण संस्थानों में कुल खर्च का लगभग तीन-चौथाई सरकार द्वारा वहन किया जाता है। भारत में आईआईटी, आईआईएम और एम्स जैसे उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षा पर अत्यधिक खर्च होता है। यह खर्च उन छात्रों से प्राप्त राशि की तुलना में कई गुना अधिक होता है। इसलिए सरकार ने शिक्षा उपकर' (Education Cess) की अवधारणा को अपनाया है। भारत में शिक्षा वित्त के स्रोतों को दो वर्गों में आन्तरिक या घरेलू स्रोत एवं बाह्य स्रोत विभाजित किया जा सकता है।

भारत की शिक्षा वित्त व्यवस्था में आन्तरिक स्रोतों का सर्वाधिक योगदान है। बाह्य स्रोत भारत में शिक्षा वित्त के सन्दर्भ में पर्याप्त भागीदारी नहीं रखते हैं।

आन्तरिक अथवा घरेलू स्रोत

आन्तरिक अथवा शिक्षा वित्त के घरेलू स्रोतों के अन्तर्गत निजी और लोक स्रोतों से प्राप्त वित्तीय राशि को स्वीकार किया जाता है। निजी स्रोतों के अन्तर्गत दान में प्राप्त राशि, छात्रों से वसूली गई फीस, मेण्टीनेन्स प्राप्तियाँ, उपहार तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त राशि को शामिल किया जाता है। लोक स्रोतों के अन्तर्गत सरकारी और अर्द्ध-सरकारी साधनों को शामिल किया जाता है। सरकारी साधनों के अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों से प्राप्त राशि तथा अर्द्ध-सरकारी साधनों के अन्तर्गत जिला, नगरपालिका और पंचायतों से प्राप्त धनराशियाँ शामिल होती हैं।

बाह्य स्रोत

शिक्षा वित्त के बाह्य स्रोतों के अन्तर्गत राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्राप्त सहायता और ऋणों को शामिल किया जाता है। बहुत-सी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ; जैसे—विश्व बैंक, वैश्विक रुप से शिक्षा के क्षेत्र में विकास के लिए सहायता राशि प्रदान करती है। यह राशि अनुदान और ऋण के रुप में प्राप्त होती है। यह राशि लम्बी अवधि के लिए अत्यन्त न्यूनतम ब्याज दर पर प्रदान की जाती है। वस्तुतः इन संस्थाओं द्वारा प्रदान की गई राशियों का प्रमुख उद्देश्य शिक्षा के द्वारा वैश्विक स्तर पर सामाजिक-आर्थिक विकास को सुनिश्चित करना है।

बजट निर्माण की संकल्पना (Concept of Budgeting)

सामान्यतः बजट किसी वित्तीय वर्ष के सन्दर्भ में सरकार की अनुमानित प्राप्तियों और व्यय का विवरण होता है। प्रशासन के एक महत्त्वपूर्ण कार्य के रूप में किसी भी योजना को शुरु करने से पहले यह आवश्यक होता है कि उस योजना के सम्बन्ध में सभी आय-

www.studyofeducation.com

व्यय का अनुमान लगाया जाए। इसके साथ ही प्रशासन का यह भी कर्त्तव्य है कि वह योजना निर्माण से पहले उसके लिए धन की व्यवस्था करें और उसके निष्पादन की रुपरेखा भी तैयार करें।

पंचवर्षीय योजनाएँ और शिक्षा बजट (Five Year Schemes and Education Budget)

भारत में एक प्राचीन शैक्षिक व्यवस्था हमेशा से विद्यमान रही है, किन्तु प्रारम्भ में यह शिक्षा समानता के सिद्धान्त पर आधारित न होकर जाति एवं सामाजिक प्रतिष्ठा पर आधारित थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत एक धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक देश के रूप में प्रगति कर रहा है। सभी के लिए शिक्षा और औद्योगिक विकास को आर्थिक समृद्धि और सामाजिक समानता एक महत्त्वपूर्ण कारक माना जा रहा है। भारतीय संविधान में सभी के लिए समान और नि:शुल्क शिक्षा व्यवस्था आदर्श को अपनाया गया है। अनुच्छेद 21 A के तहत शिक्षा के अधिकार को मूल अधिकार बना दिया गया है। भारत में मौजूद विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं और संस्कृतियों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने शिक्षा की विभिन्न श्रेणियाँ बनाई हैं; जैसे-प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा।

सर्वप्रथम वर्ष 1950 में सरकार ने योजना आयोग (अब नीति आयोग) को देश के मानव संसाधनों को विकसित करने से सम्बन्धित सुझाव देने का कार्य सौंपा। योजना आयोग ने शिक्षा को देश के विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण संसाधन बताते हुए अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी।

www.studyofeducation.com

इस रिपोर्ट में शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिए गए -

- आयोग ने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के पुनर्विन्यास (Reorientation) का सुझाव दिया तथा शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न विभागों के एकीकरण (Integration) पर बल दिया।
- प्राथमिक शिक्षा को वृहत स्तर पर शुरु किया जाए तथा व्यावसायिक शिक्षा की रिमॉडलिंग करने का सुझाव दिया।
- मौजूदा माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था और विश्वविद्यालयी शिक्षा का समेकन (Consolidation) किया जाए। उच्च शिक्षण व्यवस्थाओं को शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताओं के आधार पर विकसित किया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाए।
- शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण व्यवस्थाओं को अधिक बेहतर बनाया जाए और उनके वेतन और शिक्षण परिस्थितियों को अपग्रेड किया जाए।
- अत्यन्त पिछड़े लोगों को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए शिक्षा अनुदान की व्यवस्था की जाए।

प्रारम्भ में मानव संसाधन विकास मन्त्रालय योजना आयोग के सहयोग से शिक्षा बजट का निर्धारण करता था। केन्द्रीय बजट में एक निश्चित राशि प्रतिवर्ष शिक्षा के विकास हेतु निर्धारित कर दी जाती थी। इसके अतिरिक्त शिक्षा के विकास के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का एकमुश्त धनराशि उपलब्ध करा दी जाती थी।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) विभिन्न केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की शिक्षा विकास के लिए धनराशि उपलब्ध कराता था। वर्तमान में भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ही उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों द्वारा बनाए गई शिक्षा स्कीम के अन्तर्गत उन्हें धनराशि उपलब्ध कराता है। विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा बनाई गई शिक्षा योजनाओं की यूज़ीसी द्वारा समीक्षा की जाती है। तत्पश्चात् यूज़ीसी उन्हें पर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराता है। मानव संसाधन विकास मन्त्रालय का उच्च शिक्षा विभाग, विभिन्न तकनीकी शिक्षा योजनाओं को तैयार करने में योगदान करता है। शिश्रा बजट के सन्दर्भ पंचवर्षीय योजनाओं के लिए निर्धारित राशि इस विभाग द्वारा विभिन्न तकनीकी संस्थाओं; जैसे एआईसीटीई आदि को जारी की जाती है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर 12वीं पंचवर्षीय योजना तक शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में बजट का आवण्टन निम्न प्रकार है-

योजना	प्राथमिक शिक्षा	माध्यमिक शिक्षा	प्रौढ़ शिक्षा	विधि शिक्षा	तकनीकी शिक्षा	अन्य	कुल
पहली	57.6	5.5	0.0	7.8	14.2	15	100
दूसरी	34.8	18.7	0.0	17.6	17.9	11.0	100
तीसरी	34.1	17.5	0.0	14.8	21.2	12.4	100
चौथी	50.1	0	1.7	25.2	10.5	12.5	100
5वीं	51.7	0	2.1	27.9	9.4	8.9	100
6वीं	32.1	20.4	5.9	21.4	10.4	9.8	100
7वीं	37.3	24.0	6.2	15.7	14.2	2.6	100
8वीं	47.7	24.0	5.2	9.6	10.1	3.4	100
9वीं	57.1	21.3	1.7	8.7	8.1	3.0	100
10वीं	65.6	9.9	2.8	9.5	10.7	1.5	100
11वीं	46.5	19.8	2.2	15.5	11.1	4.9	100
12वीं	43	25			32		100

www.studyofeducation.com

शिक्षा एवं राजनीति

शिक्षा एवं राजनीति के बीच सम्बन्ध

(Relationship between Politics and Education)

शिक्षा, राजनीति से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। राजनीति एवं शिक्षा एक-दूसरे के पूरक हैं। शिक्षा मानव में विनम्रता, सहनशीलता, विनयशीलता, सहिष्णुता, आत्मबल एवं दृष्टिकोण आदि गुणों का विकास करती है, जबकि राजनीति शिक्षा को सहयोग एवं सम्मान प्रदान करती है। राजनीति के कर्णधार समाज हित में कार्य करते हैं। इस प्रकार, शिक्षा एवं राजनीति एक-दूसरे की परस्पर सहयोगी हैं तथा दोनों का कार्य व्यक्ति और समाज की उन्नति एवं समृद्धि है।

भारत में प्राचीनकाल में शिक्षा को राजाओं और महाराजाओं द्वारा सहयोग प्रदान किया जाता था। राजाओं द्वारा गुरुओं का सम्मान, आदर एवं सत्कार किया जाता था और उनकी तथा उनके आश्रमों की धन से सहायता की थी। मध्यकाल में भी कुछ परिवर्तनों के साथ यही व्यवस्था चलती रही।

ब्रिटिश काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1813 ई. में ₹ 100000 प्रतिवर्ष शिक्षा के लिए निर्धारित करके शिक्षा के क्षेत्र में हस्तक्षेप किया। 1882 ई. में 'डायरेक्टर जनरल ऑफ एजुकेशन' की नियुक्ति अंग्रेजी सरकार द्वारा की गई। इसका उद्देश्य केन्द्र में शिक्षा की देख-रेख करना था। वर्ष 1910 शिक्षा विभाग की स्थापना की गई तथा वर्ष 1919 में केन्द्र ने शिक्षा का भार प्रान्तों को सौंप दिया।

www.studyforeducation.com

वर्तमान मे शिक्षा समवर्ती सूची में है, जिसके कारण शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र और राज्य दोनों की भागीदारी है। वर्तमान में शिक्षा सरकार और निजी प्रयासों द्वारा दी जाती है, किन्तु निजी विद्यालयों को सरकार ही मान्यता एवं अनुदान देती है और विद्यालयों को सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम, परीक्षा विधि आदि का अनुकरण करना होता है, इस प्रकार इससे पता चलता है कि शिक्षा पर राजनीति का नियन्त्रण पाया जाता है।

शिक्षा में राजनीति (Politics in Education)

शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति के क्षेत्र हैं-विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय। प्रत्येक विद्यालय एवं विश्वविद्यालय में शिक्षकों और छात्रों के बीच दो गुट होते हैं। गुट के सक्रिय सदस्य राजनैतिक दाँव-पेच में अधिक रुचि लेते हैं। वर्तमान में शिक्षकों एवं छात्रों के गुट राजनैतिक दलों के आधार पर बने हुए हैं और इन लोगों का नेताओं से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।
इस प्रकार के सम्बन्धों के कारण शैक्षिक संस्थानों में शान्ति भंग हो चुकी है, क्योंकि शिक्षकों के पास विद्यार्थियों का बल होता है और वे अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए विद्यार्थियों को उपकरण के रूप में प्रयोग करते हैं,बदले में छात्र अपने मनमाने ढंग से अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

इसके निम्नलिखित परिणाम निकले हैं

- छात्रों में अनुशासनहीनता बढ़ रही है, उनका व्यवहार शिष्ट एवं विनयी नहीं है।
- अध्यापक वर्ग उठा-पटक की नीतियों में लगा रहता है, वे अध्ययन को ध्यान नहीं दे पाते।
- शिक्षा संस्थाओं में दंगे, गोली-बाजी, हत्या आदि के दृश्य सामान्य हो गए हैं।
- शिक्षा छात्रों को न ज्ञान दे पा रही है, न शान्ति और न ही समाज के साथ उनका समायोजन स्थापित कर पा रही है।
- छात्र नेता अपनी राजनैतिक गतिविधियों से विद्यालयों तथा कक्षाओं का वातावरण इतना गन्दा कर देते हैं कि प्रतिभाशाली एवं अध्ययनशाली बालकों के लिए अध्ययन करना कठिन हो जाता है। मुट्ठीभर छात्र नेता, बहुसंख्यक छात्र समुदाय को अपनी इच्छानुसार इधर-उधर मोड़ते रहते हैं।

शिक्षा पर राजनीति का नियन्त्रण

शिक्षा अपनी प्रगति के लिए सदैव शासन पर निर्भर रहती है और इसी निर्भरता के कारण शिक्षा सदैव ही राजनीति के नियन्त्रण में रहती है। शासक दल शिक्षा के माध्यम से अपनी नीतियों एवं सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं, अपने कार्यों का प्रचार करते हैं और शिक्षित वर्ग पर अपना प्रभाव डालते हैं। शासन करने वाले दल की विचारधारा ही शिक्षा का स्वरुप निर्धारित करती है तथा देश की जैसी राजनीति होती है, वैसा ही शिक्षा का स्वरुप होता है।

www.studyofeducation.com

राजनीति शिक्षा को निम्नलिखित प्रकार से प्रभावित करती है

वैधानिक नियन्त्रण सरकार शिक्षा के विकास एवं उन्नति हेतु विभिन्न प्रकार की विधियों को निर्मित करती है। उसके प्रबन्धन हेतु नियमों, कानूनों एवं नीतियों का सृजन करती है; जैसे-शिक्षा का अधिकार कानून, शिक्षा नीति, 1986, समावेशी शिक्षा सम्बन्धी कानून आदि। इससे शिक्षा जगत में शिक्षा को बढ़ावा मिलने के साथ सरकार का नियन्त्रण भी स्पष्ट होता है। .

शैक्षिक नियन्त्रण सरकार शिक्षा जगत में विभिन्न संस्थाओं में नए कोर्स को लागू कर, छात्र की संख्या अर्थात् सीटों की संख्या निर्धारित कर, कुछ प्रमुख पाठ्यक्रमों को समय-समय पर बदलकर छात्रवृत्ति प्रदान कर तथा कुछ वर्गों के लिए प्रावधान कर शैक्षिक नियन्त्रण करती है।

आर्थिक नियन्त्रण सरकार शिक्षा जगत में कुछ विशेष पाठ्यक्रम के लिए विशेष सहायता राशि देकर, बजट आवण्टन कर, आर्थिक सहायता किसी विशेष वर्ग को प्रदान कर प्रशिक्षण देकर आदि रुपों के माध्यम से आर्थिक नियन्त्रण करती है।

प्रशासनिक नियन्त्रण सरकार शिक्षा जगत में प्रशासकीय विभाग बनाकर प्राधिकरण, आयोग, अधिकारियों को प्रशिक्षण देकर, शिक्षण कार्यों के लिए निरीक्षण टीम को गठित करके, प्रशासनिक अधिकारियों को प्रोत्साहित करके आदि रुपों से प्रशासनिक नियन्त्रण स्थापित करती है।

शिक्षा के राजनीति सम्बन्धी दृष्टिकोण

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य देश का सामाजिक एवं राजनैतिक विकास कर देश की विकास एवं उन्नति के पथ पर अग्रसर करना है।
शिक्षा के राजनीतिक सम्बन्धी दृष्टिकोण निम्न हैं -

उदारवादी दृष्टिकोण (Liberal Perspective)

उदारवाद मुख्यतः यूरोप में हुए सांस्कृतिक पुनर्जागरण, धर्म सुधार आन्दोलन वैज्ञानिक क्रान्ति व औद्योगिक क्रान्ति की उपज है। यद्यपि उदारवाद शब्द का प्रयोग 19वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ, तथापि एक विचारधारा के रुप में उदारवाद का प्रारम्भ 16वीं और 17वीं शताब्दी में हो गया था, जब सामन्तवादी व्यवस्था दम तोड़ रही थी और एक नई राजनीति व्यवस्था पनप रही थी। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की प्राप्ति और निरंकुश राजसत्ता को चुनौती देने के लिए उदारवाद ने जीवन के सभी क्षेत्रों जैसे-बौद्धिक, सामाजिक, धार्मिक, संस्कृति, राजनीतिक, आर्थिक आदि में स्वतन्त्रता की माँग की।

www.studyjobeducation.com

उदारवाद का अर्थ एवं परिभाषाएँ

उदारवाद का अर्थ स्वतन्त्रता अर्थात् बाह्य प्रतिबन्धों से व्यक्ति की स्वतन्त्रता और अपने विश्वास के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता है।

सारटोरी के अनुसार, "उदारवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, न्यायिक सुरक्षा संवैधानिक राज्य का सिद्धान्त तथा व्यवहार है।"
हॉबहाउस के अनुसार, "स्वतन्त्रता उदारवाद का मूल तत्त्व है।"

उदारवाद की विशेषताएँ

यद्यपि उदारवाद की अनेक धाराएँ हैं तथापि उदारवाद की मूल विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- ➢ मानवीय विवेक में आस्था
- ➢ इतिहास तथा परम्पराओं का विरोध
- ➢ समाज और राज्य कृत्रिम संगठन है . .
- ➢ मानवीय स्वतन्त्रता की धारणा में विश्वास
- ➢ व्यक्ति साध्य और राज्य साधन है
- ➢ धर्मनिरपेक्ष राज्य पर बल .
- ➢ शासकीय स्वेच्छाचारिता का विरोध और कानून की प्रधानता का प्रतिपादन
- ➢ लोकतान्त्रिक पद्धति का समर्थन .
- ➢ अन्तर्राष्ट्रीय और विश्वशान्ति का समर्थन

उदारवाद के प्रकार

सामान्यतः उदारवाद को तीन भागों में विभाजित किया जाता है

परम्परागत या नकारात्मक उदारवाद

16वीं और 17वीं शताब्दी में उदारवाद का जो प्रारम्भिक रूप सामने आया, उसे परम्परागत उदारवाद के नाम से जाना जाता है। परम्परागत उदारवाद का आरम्भ टॉमस हॉब्स द्वारा हुआ कहा जा सकता है। परन्तु इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति जॉन लॉक की रचनाओं में होती है। वस्तुतः एडम स्मिथ, टॉमसपेन, हरबर्ट स्पेन्सर, रिकार्डो, लॉक आदि ने परम्परागत उदारवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

www.studyofeducation.com

परम्परागत उदारवाद की विशेषताएँ

- व्यक्ति के विकास में आस्था
- नकारात्मक स्वतन्त्रता पर बल
- प्राकृतिक अधिकारों में आस्था
- आर्थिक क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति
- नकारात्मक समानता का समर्थन
- प्रतियोगितापूर्ण अर्थव्यवस्था का समर्थन
- व्यक्ति साध्य और राज्य साधन है

जॉन लॉक-उदारवाद की आत्मा

17वीं सदी के समझौतावादी विचारक जॉन लॉक की विचारधारा में उदारवाद के दोनों ही रुपों-पुरातन उदारवाद और नवीन उदारवाद के दर्शन हैं। उदारवाद के समर्थकों में निस्सन्देह वह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। लॉक को उदारवाद की आत्मा कहा जा सकता है, क्योंकि उसने अपने दर्शन में स्वातन्त्र्य को शासन के सर्वोच्च लक्ष्य का स्थान प्रदान किया है। शासन को व्यक्ति स्वातन्त्र्य की प्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण साधन मानते हुए भी लॉक इस बात को कभी नहीं भूला है कि शासकीय शक्ति की मर्यादाएँ निर्धारित की जानी चाहिए, ताकि इस शक्ति का प्रयोग मानवीय स्वतन्त्रता के विरुद्ध न हो सके।

लॉक इस दृष्टि से एक प्रमुख उदारवादी है कि लॉक के दर्शन में व्यक्ति उसके महत्त्व और हित-चिन्तन को ही सर्वोपरि स्थान प्रदान किया गया है। इस सम्बन्ध में **प्रो. वाहन** का कथन है कि "लॉक की प्रणाली में प्रत्येक चीज का आधार व्यक्ति है, प्रत्येक व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्ति की प्रभुता को सुरक्षित रखना है।" राजनीतिक उदारवाद को उसकी एक बहुत बड़ी देन धार्मिक-सहिष्णुता का सिद्धान्त है। उसका विचार है कि व्यक्ति को अपने अन्तःकरण के अनुसार कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। व्यक्ति को छूट होनी चाहिए कि वह जो धर्म चाहे, माने और चाहे जिस सम्प्रदाय का सदस्य रहे।

वस्तुतः लॉक व्यक्तियों की स्वतन्त्रता की रक्षा के प्रति इतना अधिक जागरुक है कि उसके द्वारा व्यक्तियों को कुशासन के विरुद्ध विद्रोह का स्पष्ट अधिकार प्रदान किया गया है। मानवीय स्वतन्त्रता के रक्षक को 'उदारवाद की आत्मा' का नाम ठीक ही दिया गया है।

www.studyofeducation.com

सकारात्मक या आधुनिक उदारवाद

19वीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स जैसे विद्वानों ने परम्परागत उदारवाद/व्यक्तिवाद। पूँजीवाद पर कड़ा प्रहार किया। 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरणों में नकारात्मक उदारवाद का स्थान सकारात्मक उदारवाद ने ले लिया। **जे. एस. मिल, टी.एच. ग्रीन, हॉबहाउस, रिचे, हॉब्सन** और **लास्की** को सकारात्मक उदारवाद का प्रतिपादक माना जाता है।

19वीं शताब्दी में समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों के परिवर्तित हो जाने के कारण उदारवाद का भी परिवर्तित होना आवश्यक हो गया था। नकारात्मक उदारवाद औद्योगिक क्रान्ति और उससे उपजे पूँजीवाद ने पूँजीपतियों को जो अप्रतिबन्धित स्वतन्त्रता प्रदान कर दी थी उसके परिणामस्वरुप पूँजीपतियों के हाथों मजदूरों का शोषण बढ़ने लगा तथा समाजवाद के रुप में मजदूरों का शोषण रोकने व समाज में समानता की स्थापना की माँग भी जोर पकड़ने लगी।

एक तरफ पूँजीवाद के अत्याचारों को रोकने और दूसरी तरफ समाजवादियों व मार्क्सवादियों द्वारा समाज व राज्य के स्वरुप को बदले जाने की माँगों व चुनौतियों को दृष्टिगत रखते हुए उदारवादियों को भी अपने दर्शन को सामयिक बनाना आवश्यक हो गया था।

सकारात्मक उदारवाद के समर्थक राज्य को एक आवश्यक बुराई नहीं मानते। इसके विपरीत वे राज्य को समाज के सामान्य हितों के विकास के लिए एक सकारात्मक संस्था मानते हैं।

वे राज्य के कार्यों में कटौती नहीं चाहरी और उनका विश्वास है कि राज्य अपने सभी नागरिकों के हितों व विकास के लिए सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक दायित्वों को पूरा करने की दिशा में सकारात्मक भूमिका निभाए। वे राज्य को एक नैतिक संस्था के रुप में स्वीकार करते हैं जो अपने नागरिकों की नैतिक व बौद्धिक आवश्यकताओं को पूरा करे।

समकालीन उदारवाद

समकालीन उदारवादी सिद्धान्त के अन्तर्गत स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए राज्य की भूमिका के बारे में विस्तृत विश्लेषण किया गया है। समकालीन उदारवाट के अन्तर्गत जो सिद्धान्त व्यक्ति की नकारात्मक स्वतन्त्रता एवं राज्य की अहस्तक्षेप नीति का समर्थन करते हैं, उन्हें स्वेच्छातन्त्रवाद तथा नव उदारबाट की श्रेणी में रखा गया है तथा जो सिद्धान्त व्यक्ति की नकारात्मक स्वतन्त्रता को राज्य का उत्तरदायित्व मानते हैं, उसे समतावाद की संज्ञा दी जाती है।

उपरोक्त तीनों उदारवाद के प्रकार का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य रुप से देखा जा सकता है। शिक्षा में उदारवादी दृष्टिकोण के विचारक शिक्षा में प्रगतिशील परिवर्तनों, सिद्धान्तों एवं आधुनिक तकनीकों के प्रयोग का समर्थन करते हैं। शिक्षा की प्राचीन परम्पराओं में नवीनता के मूल्यों को स्थापित करना तथा समाज व लोगों की आवश्यकता के अनुरुप शिक्षा में बदलाव का समर्थन करते हैं, जिसके आधार पर शिक्षा में नवीन व व्यापक परिवर्तन सम्भव हुए हैं तथा शिक्षा में नई विचारधारा का स्पर्श देखने को मिलता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली उदारवादी दृष्टिकोण से प्रभावित है।

www.studyofeducation.com

वर्तमान में शिक्षा प्रणाली में सैद्धान्तिक के साथ-साथ व्यावहारिक शिक्षा पर भी विशेष बल दिया जाता है। शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में परिवर्तन, पाठ्यक्रम, उदारता, लचीलापन, पाठ विधियों में सामूहिक क्रियाएँ, समाज के प्रति संवेदना, प्रयोगात्मक तथा आदर्श एवं समाजवादी, राजनैतिक नीतियाँ आदि प्रमुख । हैं। साथ ही शिक्षा में नूतन विचार एवं प्रयोगात्मक पद्धति पर विशेष बल दिया जाता तथा शिक्षा में इस प्रकार के पाठ्यक्रम की व्यवस्था में वैज्ञानिक विषयों की प्रमुखता, कम्प्यूटर व अंग्रेजी शिक्षा की अनिवार्यता, व्यावसायिक शिक्षा, श्रम के प्रति निष्ठा भाव एवं समाजोपयोगी उत्पादक कार्य तथा रचनात्मकता एवं सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने वाले विषयों को पाठ्यक्रम में विशेष स्थान दिया गया है।

रुढ़िवादी दृष्टिकोण (Conservative Perspective)

18वीं शताब्दी के दौरान पश्चिमी जगत में होने वाली बौद्धिक क्रान्ति एवं नवीन विचारों के विरुद्ध होने वाली प्रतिक्रिया रुढ़िवाद के रुप में सामने आई। रुढ़िवादी किसी नए सिद्धान्त एवं विचार को परखे बिना प्राचीन विचारों, सिद्धान्तों एवं संस्थानों को कायम रखने का समर्थन करते हैं। इसमें यह विश्वास किया जाता है कि वर्तमान व्यवस्था या तो स्वयं में उत्तम है या कम-से-कम सुरक्षित एवं सुपरिचित तो है। इस दृष्टिकोण के अनुसार कोई समाज सर्वगुण सम्पन्न नहीं हो सकता।

अतः सर्वगुण सम्पन्न समाज के स्वप्न के पीछे दौड़ने से बेहतर है, उन्हीं रीति-रिवाजों एवं कानून का पालन करना, जोकि परखे जा चुके हैं। उनके अनुसार मात्र कल्पना निहित है। जबकि आधुनिक रुढ़िवादी समाज में नए जीवन का संचार करने के लिए सीमित परिवर्तन या सुधार का समर्थन करता है।

इसी आधार पर शिक्षा में प्रसिद्ध दार्शनिक **प्लेटो** के विचार प्रसिद्ध हैं। प्लेटो ने परम्परागत शिक्षा-प्रणाली पर बल दिया एवं शिक्षा सम्बन्धी दो बातों का विशेष वर्णन किया है। इस दृष्टिकोण को इस प्रकार से समझा जा सकता -राज्य के समस्त नागरिकों के लिए उपयुक्त शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था एवं संरक्षक वर्ग के लिए एक विशेष जीवन पद्धति जिसमें सम्पत्ति एवं स्त्रियों का साम्यवाद प्रचलित होगा। संरक्षक वर्ग में दार्शनिक एवं सैनिक दोनों आएँगे। शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत सभी नागरिकों (बालक-बालिकाओं) को समान अवसर दिए जाएंगे।

नवजात शिशुओं को माता-पिता से अलग करके राज्य अपने संरक्षण में ले लेगा। दस वर्ष तक की आयु तक उन्हें मुख्यतः शारीरिक शिक्षा दी जाएगी। 11 से 15 वर्ष की आयु तक संगीत की शिक्षा के साथ-साथ गणित, इतिहास तथा विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान दिया जाएगा। जिससे बालकों के चरित्र में मानसिक मृदुलता तथा विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में रुचि जागृत होगी। 16 से 20 वर्ष की आयु तक नैतिक शिक्षा दी जाएगी। जबकि 20 वर्ष की आयु में पहली विशाल परीक्षा होगी। इसमें जो विद्यार्थी अनुत्तीर्ण होंगे, उन्हें व्यापारी, मिस्त्री एवं किसान आदि बनने के लिए भेज दिया जाएगा, जबकि उत्तीर्ण छात्रों को 21-30 वर्ष की आयु तक उन्नत कोटि का शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक प्रशिक्षण दिया जाएगा।

तीस वर्ष की आयु में दूसरी महान् परीक्षा होगी जो इसमें अनुत्तीर्ण होंगे, उन्हें सहायक अर्थात् सैनिक बनने के लिए भेज दिया जाएगा तथा जो उत्तीर्ण होंगे उन्हें 31-35 वर्ष की आयु तक दर्शनशास्त्र की शिक्षा दी जाएगी। 36-50 वर्ष की आयु तक इन लोगों को सांसारिक जीवन में यथार्थ जीवन की कठिनाइयों से जूझना होगा। इसके पश्चात् अन्तिम परीक्षा होगी। इसमें जो उत्तीर्ण होंगे वे राज्य के शासक बन जाएँगे तथा जो अनुत्तीर्ण होंगे वे सहायक वर्ग के कार्य करेंगे।

www.studyofeducation.com

समालोचनात्मक दृष्टिकोण (Critical Perspective)

जहाँ एक ओर रुढ़िवादी दृष्टिकोण में नवीन विचारों, सिद्धान्तों एवं संस्थाओं को बिना परखे उनकी तीव्र आलोचना की जाती है और यह विश्वास किया जाता है कि वर्तमान में प्रचलित व्यवस्था अथवा प्रणाली ही सर्वोत्तम है। वहीं दूसरी ओर उदारवादी दृष्टिकोण में नवीन विचार, सिद्धान्तों एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का खुलकर स्वागत किया जाता है। इस सम्बन्ध में शिक्षा एवं राजनीति दोनों में व्यापक एवं अभूतपूर्व परिवर्तनों को लागू किया जाता है। यह समय के अनुसार परिवर्तित सामाजिक एवं राजनैतिक आवश्यकताओं एवं वैश्विक स्तर पर घटित क्रान्तिकारी परिवर्तन जो समाज को प्रगति की नई राह प्रदान करे, को लागू करने में समर्थन देती है।

इस प्रकार एक ओर रुढ़िवादी दृष्टिकोण है जो भूत में जीना चाहता है, तो दूसरी ओर उदारवादी दृष्टिकोण है जो वर्तमान एवं भविष्य में जीना चाहता है। परन्तु शिक्षा का समालोचनात्मक दृष्टिकोण इन दोनों का मध्यम मार्ग है, जिससे दोनों में से किसी की भी अनदेखी

किए बिना दोनों के सकारात्मक पक्षों एवं पद्धतियों के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त लिए गए हैं। जो समाज को एक नवीन प्रगतिशील मार्ग पर अग्रसर करते हैं।

शिक्षा के समालोचनात्मक दृष्टिकोण में जहाँ रुढ़िवादिता अथवा परम्परागत शिक्षा प्रणाली से शारीरिक, मानसिक, संगीत एवं दर्शन आदि के विषयों के अध्ययन को महत्त्व दिया गया है वहीं दूसरी ओर स्वतन्त्रता, तार्किक चिन्तन, व्यावसायिक शिक्षा एवं तकनीकी को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। अतः सामान्य रुप से यह कहा जा सकता है कि शिक्षा के इस स्वरूप में उदारवादी एवं रुढ़िवादी का परस्पर मिश्रण मिलता है।

राजनीति को समझने के उपागम

विभिन्न राजनैतिक सिद्धान्तों के आधार पर उपागमों का वर्णन किया राजनीति को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है, जिनमें से प्रमुख उपागमों का वर्णन निम्नलिखित है

व्यवहारवादी उपागम या व्यवहारवाद (Behaviouralism)

www.studyeducation.com

व्यवहारवाद एक ऐसी अवधारणा है जिसका जन्म द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ। इसके विकास में दो तत्त्व सहायक रहे हैं

1. द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले का अनुभववाद अनुभव।
2. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान के बाद राजनीतिशास्त्रियों के यथार्थवादी

ऐतिहासिक दृष्टि से व्यवहारवाद का प्रारम्भ 20वीं सदी के प्रारम्भ से ही दिखाई पड़ता है। **ऑर्थर बेण्टले** की पुस्तक **The Process of Government'** का विशेष महत्त्व है। व्यवहारवाद के विकास में **चार्ल्स मेरियम** की पुस्तक **New Aspects of Politics (1925)'** का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। मेरियम ने शिकागो विश्वविद्यालय को अपने विचारों का केन्द्र बनाया।

व्यवहार के विकास में **हरबर्ट ईस्टन** का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। व्यवहारवाद आधुनिक राजनीति विज्ञान में मूलतः अमेरिकी राजनीतिक वैज्ञानिकों की देन है। अमेरिका में शिकागो सम्प्रदाय के अतिरिक्त अमेरिकन पॉलिटिकल साइन्स एसोसिएशन, सोशल साइन्स रिसर्च काउन्सिल फोर्ड संस्थान आदि का भी योगदान रहा है।

व्यवहारवाद की परिभाषाएँ

- **रॉबर्ट ए डहल** के अनुसार, "व्यवहारवादी क्रान्ति परम्परागत राजनीति विज्ञान की असफलताओं के प्रति असन्तोष का परिणाम है। इस क्रान्ति का उद्देश्य राजनीति विज्ञान को अधिक वैज्ञानिक बनाना है।' इस परिभाषा में एक ओर तो व्यवहारवाद के जन्म का कारण बताया गया है और दूसरी ओर उसके उद्देश्य की ओर भी संकेत किया गया है।

- **हीज युलाऊ** के अनुसार, "राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन का सम्बन्ध राजनीतिक सन्दर्भ में मानव के कार्यों, रुख, वरीयताओं एवं आकांक्षाओं से है . ,
- **ब्लेयर कोलासा** के अनुसार, "व्यवहारवाद राजनीतिक सन्दर्भों में व्यक्ति-समूहों के व्यवहार का अध्ययन है।" ,

व्यवहारवाद की प्रकृति

किर्क पैट्रिक *ने व्यवहारवाद की प्रकृति की इस प्रकार व्याख्या की है-*

राजनीति विज्ञान के अध्ययन एवं शोध कार्य में विश्लेषण की मूल इकाई व्यक्ति है।

राजनीति विज्ञान अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति ही एक व्यवहारवादी विज्ञान है और राजनीति विज्ञान का अन्य सामाजिक विज्ञानों से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

व्यवहारवाद तथ्यों के पर्यवेक्षण, वर्गीकरण एवं मापन के लिए अधिक शुद्ध प्रविधियों के विकास पर बल देता है और इस दृष्टि से यह सांख्यिकीय या परिमाणात्मक सूत्रीकरणों के उपयोग को वरीयता देता है।

व्यवहारवाद का उद्देश्य राजनीति विज्ञान को एक व्यवस्थित आनुभविक विज्ञान के रूप में विकसित करना है।

गया है, जो

किर्क पैट्रिक ने व्यवहारवाद की प्रकृति से सम्बन्धित जो चार विशेषताएँ बताई हैं, उनके अतिरिक्त हम अन्य कुछ विशेषताओं की ओर भी संकेत कर सकते हैं, जो इस प्रकार है

www.studyofeducation.com

- व्यवहारवाद स्वयं में कोई नया सिद्धान्त नहीं है, अपितु यह राजनीति विज्ञान के अध्ययन का एक नया और वैज्ञानिक उपागम या दृष्टिकोण है। यह राजनीतिक विश्लेषण का वैज्ञानिक उपागम है।
- यह उन सभी तत्त्वों एवं प्रभावों का अध्ययन करता है जो व्यक्ति की राजनीतिक भूमिका को प्रभावित करते हैं।
- यद्यपि व्यवहारवादी अध्ययन के अन्तर्गत राजनीति विज्ञान का सम्पूर्ण क्षेत्र आता है, किन्तु अनुभव में देखा गया है कि वह मतदान-व्यवहार, छोटे-छोटे समूह एवं संगठन, राजनीतिक प्रणालियाँ, नीति-निर्धारण आदि के अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त उपागम (दृष्टिकोण) है।

व्यवहारवादी आन्दोलन के लक्ष्य एवं उद्देश्य

व्यवहारवादी दृष्टिकोण अथवा उपागम का जन्म एक ऐसे वैचारिक आन्दोलन के रूप में हुआ है, जिसका उद्देश्य परम्परागत राजनीति विज्ञान के स्थान पर एक नए व वैज्ञानिक राजनीति विज्ञान की स्थापना रहा है। संक्षेप में, व्यवहारवादी आन्दोलन के प्रमुख लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

- **एक नवीन राजनीति विज्ञान की स्थापना** व्यवहारवादी आन्दोलन परम्परागत राजनीति विज्ञान के स्थान पर एक 'नवीन राजनीति विज्ञान' की स्थापना करना चाहता है। व्यवहारवादियों का मत है कि यदि राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिए परम्परागत पद्धतियों को त्याग दिया जाए और उनके स्थान पर वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों को प्रयोग में लाया जाए तो नवीन राजनीति विज्ञान की स्थापना हो सकती है।
- **राजनीति को विज्ञान के रूप में विकसित करना** व्यवहारवादियों का मत है कि राजनीति विज्ञान के तथ्यों एवं घटनाओं के अध्ययन के लिए प्राकृतिक विज्ञान की अध्ययन पद्धतियों को अपनाया जा सकता है। इन वैज्ञानिक पद्धतियों की सहायता से राजनीति विज्ञान के सम्पूर्ण अध्ययन को मूल-निरपेक्ष, यथार्थवादी एवं वस्तुनिष्ठ बनाया जा सकता है और इस प्रकार 'राजनीति का विज्ञान' भी विकसित किया जा सकता है। वे राजनीति विज्ञान को एक आनुभविक विज्ञान का रुप देना चाहते हैं।
- **राजनीतिक सन्दर्भ में मानव-व्यवहार का अध्ययन** व्यवहारवादी राजनीतिक सन्दर्भ में मानव के व्यवहार का अध्ययन करना चाहते हैं। उनका मत है कि इस प्रकार वे राजनीति का निष्पक्ष एवं यथार्थवादी अध्ययन करने में समर्थ हो सकते हैं।
- **अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ घनिष्ठ सम्बन्धों की स्थापना** व्यवहारवाद का एक प्रमुख उद्देश्य अन्तर-अनुशासनात्मक दृष्टिकोण की स्थापना व विकास करना है। वे राजनीतिक सन्दर्भ में मानव के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन करना चाहते हैं, किन्तु इसके साथ ही वे स्वीकारते हैं कि मानव के राजनीतिक व्यवहार को केवल राजनीतिक तत्त्व ही प्रभावित नहीं करते हैं, अपितु अन्य अनेक गैर-राजनीतिक तत्त्व भी मानव के राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करते हैं। अतः उनका मत है कि राजनीतिक क्षेत्र में मानव के सम्पूर्ण व्यवहार को सही रुप से समझने के लिए आवश्यक है कि राजनीति विज्ञान का सम्बन्ध अन्य अनुशासनों (विद्याओं या विषयों) से जोड़ा जाए।
- इस दृष्टि से वे राजनीति विज्ञान का समाजशास्त्र, मनोविज्ञान एवं अर्थशास्त्र जैसे अनुशासनों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकारते हैं। वे मानते हैं कि इन समाज विज्ञानों की अध्ययन पद्धतियों एवं अवधारणाओं को राजनीति विज्ञान के अध्ययन में अपनाया जाना चाहिए।

www.studyofeducation.com

उत्तर-व्यवहारवाद (Post-Behaviouralism)

उत्तर-व्यवहारवाद का जन्म जिन परिस्थितियों में हुआ उनके आधार पर प्रायः यह कहा जाता है कि उत्तर-व्यवहारवाद का उदय व्यवहारयाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रुप में हुआ है, किन्तु वास्तव में यह कथन पूर्ण सत्य नहीं है।

डेविड ईस्टन ने उत्तर-व्यवहारवाद को व्यवहारवाद के प्रति एक प्रतिक्रिया के रूप में नहीं, अपितु मूल व्यवहारवादी आन्दोलन में एक सार्थक सुधार के रूप में स्वीकार किया है। यदि सम्पूर्ण राजनीतिक विज्ञान के प्रसंग में उत्तर-व्यवहारवाद पर विचार किया जाए तो यह एक ऐसा बौद्धिक प्रयास दिखाई पड़ता है जिसने राजनीति विज्ञान के परम्परागत (मूल्य प्रधान) दृष्टिकोण एवं आधुनिक व्यवहारवादी (तथ्य प्रधान) दृष्टिकोण के बीच उचित ताल-मेल एवं समन्वय स्थापित किया है।

माइकल हैस व थियोडर एल बेकर ने उत्तर-व्यवहारवाद के जन्म व विकास की व्याख्या एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के रूप में की है। राजनीति विज्ञान का परम्परागत दृष्टिकोण एक वाद है और व्यवहारवादी दृष्टिकोण एक प्रतिवाद है और इन दोनों के अन्तर्विरोधों एवं संघर्ष से उत्तर-व्यवहारवाद का जन्म हुआ है, जो एक संश्लेषण (संवाद) है। एक संश्लेषण के रुप में उत्तर-व्यवहारवाद में राजनीति विज्ञान के परम्परागत दृष्टिकोण तथा व्यवहारवादी दृष्टिकोण के एक ही लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इसमें प्रथम का शास्त्रीय लक्षण (मूल्य) तथा द्वितीय का वैज्ञानिक लक्षण (वैज्ञानिक पद्धति एवं तथ्य) दोनों ही मौजूद हैं, तो भी उत्तर-व्यवहारवाद इन दोनों के समान नहीं, उनसे भिन्न है। एस. एल. वेस्वी ने उत्तर-व्यवहारवाद के रुप में विकसित राजनीतिक दृष्टिकोण के महत्त्व को बताते हुए कहा है, अब परम्परावादियों तथा व्यवहारवादियों दोनों ने ही एक-दूसरे के दृष्टिकोणों में मौजूद श्रेष्ठताओं (गुणों) को स्वीकार करने के रुप में उत्तर-व्यवहारवादियों ने अपने अध्ययन में परम्परावादियों की तरह मूल्यों को स्थान दिया है, किन्तु मात्र इस आधार पर इसे परम्परावाद की पुनरावृत्ति नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः इसने परम्परावादियों के मूल्यात्मक दृष्टिकोण के साथ ही व्यवहारवादियों की वैज्ञानिक अध्ययन तकनीकों को भी अपनाया है।
इस रुप में उत्तर-व्यवहारवाद को हमारे युग के राजनीति विज्ञान का सहज एवं सन्तुलित विकास कहना अधिक उचित होगा। इसने राजनीति विज्ञान को हमारे युग की समस्याओं के सन्दर्भ में अधिक जागरुक, प्रासंगिक एवं कार्योन्मुखी बनाया है।

www.studyofeducation.com

उत्तर-व्यवहारवादी क्रान्ति की उत्पत्ति के कारण

उत्तर-व्यवहारवादी क्रान्ति की उत्पत्ति का मूल कारण व्यवहारवाद में निहित कमियों एवं दोषों के विरुद्ध पैदा हुए तीव्र असन्तोष को माना जाता है। व्यवहारवाद एक ओर अपने सैद्धान्तिक लक्ष्यों व उद्देश्यों को प्राप्त करने में असमर्थ रहा और दूसरी ओर यह शुद्ध अनुसन्धान कार्य में अत्यधिक डूबे रहने के कारण अपने युग की गम्भीर समस्याओं के समाधान के बारे में कोई ठोस व निश्चित विचार देने में भी असफल रहा। इस स्थिति में स्वयं व्यवहारवादियों ने राजनीतिक जगत में व्यवहारवादी दृष्टिकोण की अनुपयोगिता को स्वीकारा और इसमें सुधार की आवश्यकता को अनुभव किया।

वर्ष 1969 में अमेरिकन पॉलिटिकल साइन्स एसोसिएशन के 65वें अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में पुराने व्यवहारवादी विद्वान् **डेविड ईस्टन** ने व्यवहारवाद की आलोचना करते हुए कहा कि *"व्यवहारवाद के नाम पर निम्न स्तरीय तथा प्रायः पूर्ण अप्रासंगिक अनुसन्धान पर बहुत अधिक समय नष्ट कर दिया है।"* इसके साथ ही डेविड ईस्टन ने व्यवहारवाद में आधारभूत सुधार की मांग भी की। व्यवहारवाद के दोषों एवं कमियों के विरुद्ध व्यवहारवादियों की इस सुधारात्मक प्रक्रिया के परिणामस्वरुप ही उत्तरव्यवहारवाद की स्थापना एवं विकास हुआ है। संक्षेप में, उत्तर-व्यवहारवादी क्रान्ति की उत्पत्ति के प्रमुख कारण निम्नलिखित रुप में बताए जा सकते हैं।

व्यवहारवादियों द्वारा असफल प्रयास

व्यवहारवाद का आधारभूत दोष यह है कि यह प्राकृतिक विज्ञान और राजनीति विज्ञान के सूक्ष्म अन्तर को समझने में असमर्थ रहा। अपने इस दोष के कारण व्यवहारवादियों ने राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन के लिए प्राकृतिक विज्ञान जैसी शुद्ध वैज्ञानिक पद्धति व तकनीक विकसित करने का प्रयास किया, किन्तु यह सम्भव नहीं था। अतः व्यवहारवादियों की इस मान्यता के विरोध में उत्तर-व्यवहारवाद का जन्म हुआ।

व्यवहारवादियों की मानव व्यवहार को समझने में असमर्थता

व्यवहारवादियों का दावा था कि वे मानव व्यवहार का वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक अध्ययन करके मानव व्यवहार के बारे में निश्चित नियम बना सकते हैं और वे इन नियमों के आधार पर भविष्य के मानव व्यवहार के बारे में निश्चित व सही भविष्यवाणी भी करने में सफल हो सकते हैं, किन्तु वास्तव में मानव व्यवहार का वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक अध्ययन ही सम्भव नहीं है और इसलिए मानव व्यवहार के बारे में न तो निश्चित नियमों का निर्माण सम्भव था और न सही भविष्यवाणी ही की जा सकती थी। व्यवहारवाद की इस असफलता ने उस वैचारिक वातावरण को जन्म दिया, जिसमें उत्तर-व्यवहारवाद की धारणा का जन्म हुआ।

व्यवहारवाद द्वारा मूल्यों की उपेक्षा

व्यवहारवाद ने राजनीति विज्ञान के पूर्ण वैज्ञानिक के नाम पर मात्र तथ्यों के अध्ययन पर बल दिया और मूल्यों की पूरी उपेक्षा की। अपने मूल्य-निरपेक्ष अध्ययन के कारण व्यवहारवाद को '**बीसवीं सदी की दुःखान्त घटना**' तथा '**गटर की विजय**' कहा जाने लगा। वस्तुतः राजनीति विज्ञान के सन्तुलित अध्ययन के लिए तथ्य एवं मूल्य दोनों का ही महत्त्व है। व्यवहारवाद के इस दोष के विरोध में उत्तर-व्यवहारवाद का जन्म हुआ।

www.studyofeducation.com

प्रणाली-विश्लेषण या सिद्धान्त (Theory of System Analysis)

राजनीति विज्ञान के आधुनिक उपागम के अन्तर्गत प्रणाली-विश्लेषण सिद्धान्त का विशेष स्थान है। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम राजनीतिक प्रणाली की संकल्पना को स्पष्ट करना आवश्यक है। राजनीतिक प्रणाली की संकल्पना आधुनिक राजनीतिक विश्लेषण की देन है। राजनीतिक प्रणाली की संकल्पना राजनीति को एक प्रक्रिया के रूप में समझने का प्रयास है। अतः प्रक्रिया एवं प्रणाली को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रक्रिया उन क्रियाओं की श्रृंखला है जो किसी स्थिति में परिवर्तन लाती है; जैसे-धूप, वर्षा एवं जलवायु आदि। ये परस्पर एक-दूसरे पर क्रिया करते हैं। किसी भी पर्यावरण में जिस ढाँचे के अन्तर्गत कोई विशेष प्रक्रिया सम्पन्न होती है उसे प्रणाली कहा जाता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में प्रणाली की संकल्पना एक विश्लेषणात्मक संकल्पना है।

इसे किसी सजीव की भाँति मूर्त वस्तु नहीं समझा जाना चाहिए। अन्य शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि विश्लेषण के उद्देश्य से किसी प्रणाली से जुड़े हुए तत्त्वों पर अमूर्त तत्त्वों के रुप में विचार करना चाहिए, मूर्त तत्त्व रुप में नहीं। अतः राजनीतिक प्रणाली

को उन व्यक्तियों का समूह नहीं समझना चाहिए जो सरकार या उसके विभिन्न अंगों की रचना करते हैं। इसकी संकल्पना उन अमूर्त तत्त्वों के रूप में करनी चाहिए जो एक-दूसरे पर परस्पर अन्तःक्रिया करके राजनीतिक प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं।

राजनीतिक प्रणाली के प्रतिरूप

राजनीतिक विश्लेषण के उद्देश्य से राजनीतिक प्रणाली के अनेक प्रतिरूप विकसित किए गए हैं। इनमें ग्रेबियन आल्मण्ड एवं डेविड ईस्टन के प्रतिरूप विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। आल्मण्ड के प्रतिरूप को संरचनात्मक-कृत्यात्मक विश्लेषण कहा जाता है। प्रणाली-सिद्धान्त के समर्थकों में ईस्टन उन चुनिन्दा लेखकों में थे, जो स्वयं राजनीति विज्ञान क्षेत्र से आए थे। जबकि अन्य लेखक ; अन्य क्षेत्रों जैसे-समाज विज्ञान, मानवविज्ञान आदि से जुड़े हुए थे।

ईस्टन ने अपनी प्रसिद्ध कृति '**पॉलिटिकल सिस्टम-इन इन्क्वायरी इन्टू द स्टेट ऑफ पॉलिटिकल साइन्स**' (राजनीतिक प्रणाली-राजनीति विज्ञान की दशा को अन्वेषण) 1953 के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया था कि राजनीति का सरोकार '**मूल्यों के आधिकारिक आवण्टन**' से है। इस परिभाषा के आधार पर ईस्टन ने 'राजनीतिक' प्रणाली के स्वरुप को स्पष्ट करने का प्रयास किया। इस संकल्पना के अनुसार प्रणाली उन तत्त्वों के समूह को कहते हैं, जो-

1. एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं।
2. एक-दूसरे के प्रति परस्पर अन्तःक्रिया करते हों।
3. एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हैं।

ईस्टन के अनुसार, "राजनीतिक प्रणाली किसी समाज के अन्दर उन अन्तःक्रियाओं की प्रणाली को कहते हैं जिसके माध्यम से अनिवार्य या आधिकारिक आवण्टन किए जाते हैं।" अतः कहा जा सकता है कि इन अन्तःक्रियाओं के माध्यम से ऐसे नियम निर्धारित किए जाते हैं जिनके द्वारा समाज के संसाधनों को भिन्न-भिन्न समूहों के उपयोग के लिए नियत किया जाता है एवं इन नियमों तथा आदेशों को समाज के लिए प्रामाणिक अथवा अनिवार्य मानकर उनका पालन किया जाता है।

राजनीतिक प्रणाली को अपने पर्यावरण से जो तत्त्व प्राप्त होते हैं, उन्हें आगत कहा जाता है तथा जिन वस्तुओं का उत्पादन या निर्माण होता है, उन्हें निर्गत कहा जाता है। ईस्टन के अनुसार, राजनीतिक प्रणाली को सामाजिक जीवन से 'माँगें और समर्थन' आगत के रूप में प्राप्त होते हैं। यह प्रणाली नीतियों का निर्माण कर उन्हें निर्गत के रूप में पर्यावरण की ओर प्रवाहित करती है।

परन्तु निर्गत भी पर्यावरण में जाकर उसके तत्त्वों से क्रिया करते हैं, जिससे नए आगत अस्तित्व में आते हैं तथा ये आगत पुनर्निवेश के माध्यम से राजनीतिक प्रणाली में वापस चले जाते हैं। ईस्टन ने माँग निर्माण के रूपक का प्रयोग करते हुए यह संकेत किया है कि माँग कच्चा माल है, जिससे निर्णय रुपी माल का निर्माण किया जाता है। इस प्रक्रिया में लोगों का समर्थन ऊर्जा की भूमिका निभाता है। ईस्टन ने राजनीतिक प्रणाली के आगत और निर्गत तत्त्वों का विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इससे राजनीतिक प्रणाली के गहन विश्लेषण में सहायता मिलती है।

www.studyofeducation.com

इस प्रणाली में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों का अध्ययन आवश्यक होता है। *ऐसे तथ्य निम्न हैं-*

माँगें एवं समर्थन

माँगें चार प्रकार की होती हैं-

1. **वस्तुओं एवं सेवाओं के आवण्टन की माँगें:** इस प्रकार की माँगों में श्रमिकों की मजदूरी एवं कार्य परिस्थितियों में सुधार करने, मनोरंजन, शैक्षिक अवसर, सुरक्षा, सड़क, परिवहन की व्यवस्था एवं अन्य सुविधाओं आदि की माँगें आदि पाए जाते हैं। .
2. **व्यवहार के विनियमन की माँगें:** इस प्रकार की माँगों में सार्वजनिक व्यवस्था, बाजार नियन्त्रण कानून, सार्वजनिक सुरक्षा एवं स्वच्छता आदि पाए जाते हैं।
3. **राजनीतिक जीवन में सहभागिता सम्बन्धी माँगें** इस प्रकार की माँगों में मतदान करने, सरकारी विभागों के पास याचिका भेजना, सूचना प्राप्त करने, सरकारी पद प्राप्त करने तथा संघ बनाने आदि से सम्बन्धित माँगों को रखा गया है।
4. **सूचना एवं संचार सम्बन्धित माँगें** इस प्रकार की माँगों में सरकारी तन्त्र, नीतियों, विदेशी गतिविधियों एवं सूचनाओं तथा औपचारिक अवसरों पर राष्ट्र के गौरव, शक्ति एवं सम्मान के प्रदर्शन से सम्बन्धित माँगे आदि पाए जाते हैं।

माँग के साथ-साथ समर्थन भी चार प्रकार के होते हैं-माँग समर्थन, कायदे कानून का पालन, सहभागिता मूलक समर्थन एवं सरकारी सूचनाओं के प्रति ध्यान देने की प्रवृत्ति।

www.studyofeducation.com

निर्गत

दोहन (दोहन के अन्तर्गत लोगों से कर, शुल्क तथा व्यक्तिगत सेवा की माँग की जाती है), व्यवहार का विनियमन, प्रतीकात्मक निर्गत एवं वस्तुओं, सेवाओं, अवसरों, मान-सम्मान आदि का विवरण। सामान्यतः परिस्थितियों में माँगे ' राजनीतिक प्रणाली को अपना लक्ष्य एवं नीतियाँ निर्धारित करने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करती है।

ऐसी उम्मीद की जाती है कि यदि राजनीतिक प्रणाली समाज से आने वाली, 'माँगों को प्रभावशाली प्रकार से उचित निर्णयों एवं नीतियों में रूपान्तरित कर दे तो उसे समर्थन अवश्य प्राप्त होंगे।

यह आशा भी की जाती है कि पुनर्निवेश वाहिका निर्गत और आगत तत्त्वों में उपयुक्त समायोजन स्थापित कर देगी। परन्तु ऐसी स्थिति उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि यदि माँग अधिक बढ़ जाएगी तो राजनीतिक प्रणाली में खिंचाव की स्थिति उत्पन्न होगी। इसके लिए विभिन्न प्रकार के नियामक तन्त्रों का प्रयोग आवश्यक है।

ये नियामक तन्त्र माँगों को नियन्त्रित करते हैं, जो निम्न हैं-

- **दबाव गुट एवं राजनीतिक दल** ये महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो प्रत्येक माँग को बेरोक-टोक प्रणाली के मध्य नहीं जाने देते।
- **सांस्कृतिक तन्त्र** माँगों पर सांस्कृतिक तन्त्रों का कड़ा नियन्त्रण रहता है। इसका मुख्य कार्य यह जाँच करना है कि कौन-सी माँगें उचित हैं, कौन-सी नहीं।
- **सम्प्रेषण वाहिकाएँ** माँग के सम्प्रेषण वाहिकाओं के माध्यम से राजनीतिक प्रणाली के मध्य पहुँचती हैं, अत: माँगे बढ़ने पर इन सम्प्रेषण वाहिकाओं की संख्या बढ़ाई जा सकती है।
- **रुपान्तरण प्रकिया** इस प्रक्रिया के द्वारा माँगों को नियन्त्रित कर सकते हैं। यदि आधिकारिक निर्णयों से प्रणाली के अधिक सदस्य प्रसन्न नहीं हैं तो इसके परिणामस्वरुप प्रणाली को समर्थन मिलना बन्द हो जाएगा। .

तर्कसंगत विकल्प का सिद्धान्त (Theory of Rational Choice)

तर्कसंगत विकल्प का सिद्धान्त एक आर्थिक सिद्धान्त है जो यह बताता है कि व्यक्ति सदैव विवेकपूर्ण एवं तार्किक निर्णय करते हैं। ये फैसले अधिक लाभ या सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। अधिकांशत: मुख्यधारा शैक्षिक मान्यताओं और सिद्धान्त तर्कसंगत विकल्प सिद्धान्त पर आधारित है। तर्कसंगत विकल्प सिद्धान्त यह मानता है कि सभी लोग किसी भी स्थिति में अपने लाभ को सक्रिय रुप से अधिकतम करने का प्रयास करते है और इसलिए लगातार अपने नुकसान को कम करने का प्रयास भी करते हैं।
यह सिद्धान्त इस बात पर आधारित है, कि सभी व्यक्ति तर्कसंगत गणनाओं पर अपने फैसलों का आधार तय करते हैं। सिद्धान्त में कहा गया है कि सभी जटिल सामाजिक घटनाएँ, व्यक्तिगत मानव कार्यों से संचालित होती है, इसलिए यदि एक अर्थशास्त्री सामाजिक परिवर्तन या सामाजिक संस्थानों के कार्यों की व्याख्या करना चाहता है, तो उन्हें उन सम्पूर्ण व्यक्तियों के तर्कसंगत निर्णयों को देखने की आवश्यकता है, जो उन्हें पूर्ण बनाते हैं।

www.studyofeducation.com

तर्कसंगत विकल्प सिद्धान्त की सीमाएँ

कई राजनीतिक एवं अर्थशास्त्री तर्कसंगत विकल्प सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं जबकि कई इस सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते। डिजेण्टर ने बताया है कि व्यक्ति सदैव तर्कसंगत उपयोगिता-अधिकतम निर्णय नहीं करते हैं; जैसे-व्यवहार अर्थशास्त्र का क्षेत्र इस बात पर आधारित है कि व्यक्ति अकसर तर्कहीन निर्णय लेते हैं एवं यह ज्ञात करते हैं कि वे ऐसा क्यों करते हैं।
इसके अतिरिक्त नोबेल पुरस्कार विजेता हरबर्ट साइमन ने सीमाबद्ध तर्कसंगतता के सिद्धान्त का प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया था कि लोग सदैव उन सभी सूचनाओं को प्राप्त करने में सक्षम नहीं होते, जिन्हें उन्हें सबसे अच्छा सम्भव निर्णय लेने की आवश्यकता होती है।
इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध अर्थशास्त्री रिचर्ड थालर के मानसिक लेखांकन के विचार से यह ज्ञात होता है कि लोग दूसरों के मुकाबले कुछ डॉलर पर अधिक मूल्य देकर अतार्किक व्यवहार करते हैं, जबकि सभी डॉलर का मूल्य समान होता है। इस प्रकार तर्कसंगत

विकल्प सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति अपनी परिस्थिति एवं सूचनाओं के संग्रह के आधार पर तर्कसंगत विकल्पों का चयन करते हैं, जिसमें तार्किकता तथा अतार्किकता दोनों शामिल होते हैं।

राजनीतिक विकास तथा राजनीतिक समाजीकरण की शिक्षा

राजनीतिक विकास तथा राजनीतिक समाजीकरण के लिए शिक्षा, एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। इस शिक्षा में घर, परिवार, समाज, विद्यालय, कॉलेज आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इसके तहत व्यक्ति जिस समाज में पैदा होता है उसके नियम, कानून, रीति-रिवाज आदि को ग्रहण करता है, जिससे व्यक्ति में समाजीकरण की भावना का विकास होता है। वहीं वह विद्यालय एवं पाठ्यक्रम से आस-पास की घटनाएँ, नगर-राज्य तथा प्रशासन, सरकार, सरकार के कार्य आदि को सीखता है। जिससे व्यक्ति में एक समझ बनती है और यही समझ राजनीतिक विकास को प्रेरित करती है।

इसके साथ ही राजनीतिक समाजीकरण की बेहतर समझ विकसित होती है और वह नए आयामों के साथ समाजीकरण की परम्परा को बनाए रखते हुए राजनीतिक उपयोगिता के प्रति प्रेरित होते हैं और बढ़ावा देते हैं। इसके साथ ही राजनीतिक विकास तथा राजनीतिक समाजीकरण की शिक्षण प्रक्रिया के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था को भी प्रभावित करती है। इस प्रकार इनका सम्बन्ध पूरकता का पाया जाता है।

राजनीतिक समाजीकरण को बेहतर तरीके से समझने हेतु शिक्षा को जोड़कर अध्ययन किया जाना चाहिए। जिससे शिक्षा तथा राजनीति के सम्बन्धों को बेहतर समझ के साथ राजनीतिक विकास तथा राजनीतिक समाजीकरण की बेहतर समझ विकसित हो। अतः इस सन्दर्भ में राजनीतिक विकास तथा राजनीतिक समाजीकरण का अलग-अलग इसके बावजूद शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान पाया जाता है। इसलिए राजनीतिक तथा विस्तृत विवरण निम्न है

राजनीतिक विकास (Political Development)

राजनीतिक विकास की संकल्पना मुख्यतः उदारवादी परम्परा की देन है। राजनीति विकास की संकल्पना का प्रारम्भ अमेरिकी राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत वर्ष 1960-1970 के मध्य प्रिन्सटन विश्वविद्यालय में हुआ। इसका उद्देश्य नवोदित एवं विकासशील देशों की राजनीतिक प्रक्रिया का विश्लेषण करना था। यह राजनीतिक विकास के लिए व्यक्ति में शिक्षा का होना महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि व्यक्ति में शिक्षा राजनीतिक चेतना को जगाने में सहायता करता है, वहीं राजनीतिक विकास शिक्षा को भी प्रभावित करती है। इसलिए राजनीतिक विकास के लक्षण को समझना आवश्यक है।

www.studyofeducation.com

राजनीतिक विकास के लक्षण

I. जेम्स कोलमैन एवं लूसियन पाई के प्रतिरुप के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण में यह मान्यता निहित थी कि आधुनिक व्यवस्था राज्य और समाज की समस्याओं को सुलझाने में अधिक कार्यकुशल सिद्ध होगी। सरकार अपने नागरिकों के समर्थन एवं सहयोग हेतु मुख्यतः वैधता का सहारा लेती है। इस प्रतिरुप के अन्तर्गत राजनीतिक आधुनिकीकरण या राजनीतिक विकास के प्रमुख लक्षण-समानता, क्षमता एवं विभेदीकरण हैं।

II. ग्रेबियन आल्मण्ड एवं जी. बी. पॉवेल का राजनीतिक विकास' प्रतिरूप-राजनीति का तर्कमुखीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें जनसाधारण, धर्म एवं रीति-रिवाज को बन्धनों से ऊपर उठकर समानता के भाव से शासन गतिविधियों में भाग लेती है। यह मुख्यत: कार्यक्षमता का विस्तार एवं संरचनाओं का विभेदीकरण पर निर्भर करता है।

III. भारतीय राष्ट्रीय एवं राजनैतिक विकास के लिए इसके लक्ष्यों-प्रजातन्त्र, राष्ट्रीय ... एकता, आर्थिक निर्भरता, धर्म निरपेक्षता की चर्चा करना तथा उनका विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही संविधान में दिए गए प्रावधानों को समझना तथा न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व भाव आदि आदर्शों को अपनाना महत्त्वपूर्ण है। चूंकि ये प्रावधान राजनैतिक विकास की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं अतः इन्हें जनमानस तक पहुँचाना आवश्यक है तथा उपयुक्त शिक्षा उपलब्ध कराए बिना इन आदर्शों की प्राप्ति सम्भव नहीं होती है।

IV. स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय धार्मिक कट्टरता, जाति व्यवस्था के कुप्रभाव चरम पर थे, जिनके परिणामस्वरुप सामाजिक जीवन पूर्णतया विभाजित एवं कमजोर बन चुका था। इस परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए हमारे संविधानीय प्रावधान न्याय, स्वतन्त्रता समानता आदि को यथायोग्य स्थान दिया गया। ये भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक विकास में कसौटी बन गए, जिनके आधार पर राजनैतिक विकास, कानूनी व्यवस्था निर्धारित करना निश्चित किया गया। यह सब कुछ शिक्षा के सहयोग से ही सम्पन्न किया जाना सम्भव हो सका।

V. संविधान में उल्लेखित आदर्शों को व्यवहार में उतारने के लिए शिक्षित होना अनिवार्य है, ताकि वे उन्हें समझ सकें तथा अपने जीवन क्रम को उसके अनुसार सुनियोजित कर सकें। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि राजनैतिक विकास तथा सभी को शिक्षा प्राप्त करने के व्यापक अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए जिसके लिए सरकार के प्रयास आज भी कार्यरत् हैं। सभी नागरिकों को समान शैक्षिक अवसर प्रदान किए जाएँ।

www.studyvateducation.com

उभरते हुए समाज में शिक्षा का स्वरूप

ठटाए राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में विषमताओं को हटाते हुए शैक्षिक अवसरों जैसे समानता के सन्दर्भ में विशिष्ट कदम उठाए गए हैं। जिनमें महिलाओं को समानता उपलब्ध कराने हेतु शिक्षा की योजना व उसी प्रकार से अनुसूचित जातियों व जनजातियों की शिक्षा व अन्य पिछड़े, में वर्ग, क्षेत्रीय अल्पसंख्यकों एवं विकलांग आदि के सम्बन्ध कदमों का उल्लेख आवश्यक है।

भारतीय संविधान में निहित प्रजातान्त्रिक मूल्यों तथा सामाजिक व आर्थिक विकास के प्रति सम्पूर्ण शैक्षिक अवसरों में नागरिकों के लिए समानता की सार्वभौमिक माँग न्यायसंगत है। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की व्यवस्था

निःशुल्क, अनिवार्य जोकि पर्याप्त विधि तथा सामग्री सहित हो तथा माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम विविध तथा व्यापक हो जोकि छात्रों की व्यक्तिगत रुचियों तथा आवश्यकता की भिन्नता के अनुरूप हो व उच्च स्तरीय शिक्षा उन सभी के लिए उपलब्ध हो जिनमें आवश्यक योग्यता तथा समाज में हित एवं उत्थान में योगदान दे सकें।
धर्म निरपेक्षता के सन्दर्भ शिक्षा के क्षेत्र में, विशेषकर राजकीय संस्थाओं में धर्म के बारे में तटस्थ दृष्टिकोण का कठोरता से पालन किया गया है इसका अभिप्राय यह है कि धर्म विशेष के पक्ष में उन्हें किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी जा सकती। शैक्षिक संस्थाओं में विभिन्न धर्मों के मूल्यों के आधार पर नैतिक शिक्षा का दिया जाना निश्चित किया है।

इसके साथ ही बाबू सम्पूर्णानन्द कमेटी, मुदालियर तथा कोठारी आयोग आदि ने इस दिशा में व्यापक प्रयास व मार्गदर्शन किया है। इसके अतिरिक्त देश में अल्पसंख्यकों को अपनी शिक्षण संस्थाएँ चलाने तथा अपनी भाषा एवं संस्कृति की प्रगति हेतु अधिकार दिए गए हैं तथा राज्य की ओर से उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता है। भारतीय संविधान के 86वें संशोधन द्वारा 21(क) में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है जिसके अनुसार 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई है। जिसे 1 अप्रैल, 2010 से जम्मू-कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में किया लागू गया है।

www.studyofeducation.com

राजनीतिक समाजीकरण (Political Socialisation)

समाजीकरण से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है, जिसके द्वारा एक समाज के विषय को प्राप्त करते हैं। यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से लोग के लोग अपने मूल्यों, विश्वासों, आदर्शों और अपनी संस्कृति के लक्ष्यों अपनी संस्कृति से जुड़ते हैं। इसी प्रकार राजनीतिक समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक राजनीतिक व्यवस्था के लोग राजनीतिक वस्तुओं और कार्यों के प्रति अपने झुकावों को अपनाते हैं अर्थात् सीखते हैं।
यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से राजनीतिक संस्कृति एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक पहुँचती है। आल्मण्ड ने उचित ही कहा है कि यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृति को बनाए रखा और बदला जाता है। राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया सामान्यतः साधारण समाजीकरण की प्रक्रिया का ही एक भाग है। यह साधारण समाजीकरण की प्रक्रिया के राजनीतिक पहलू का प्रतिनिधित्व करती है।

यदि हम राजनीतिक व्यवस्था के आल्मण्ड के दृष्टिकोण के प्रयोग को अपनाएँ तो हम उसकी व्याख्या, प्रारम्भिक निवेश प्रक्रिया जहाँ से राजनीतिक व्यवस्था वास्तव में आरम्भ होती है, के रूप में कर सकते हैं। इस राजनीतिक समाजीकरण के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण होती है, जो विभिन्न राजनीतिक समाजीकरण के साधनों के माध्यम से राजनीतिक एवं शिक्षा के सम्बन्धों को स्पष्ट करता है। अतः राजनीतिक समाजीकरण के साधनों का अध्ययन आवश्यक है।

राजनीतिक समाजीकरण के साधन

राजनीतिक समाजीकरण की निम्नलिखित छः मुख्य एजेन्सियाँ अथवा साधन हैं-

परिवार

आमण्ड और पॉवेल के अनुसार, जिस समाजीकरण की संरचना का सामना व्यक्ति सबसे पहले करता है, वह है परिवार। व्यक्ति के जीवन के प्रारम्भिक काल में उस पर, जो अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ते हैं उनका प्रभाव तो आजीवन रहता है। आल्मण्ड और वर्बा लिखते हैं कि भागीदारी और निर्णय-निर्माण के सम्बन्ध में पहले अनुभव बचपन से ही राजनीतिक प्रतियोगिता की ओर उसका ध्यान खींचते हैं और वह बड़ा होकर राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने लग जाता है। सामाजिक व्यवस्था के साथ व्यक्ति का पहला सम्पर्क परिवार के माध्यम से ही होता है। वह जन्म लेने के पश्चात् परिवार से ही प्रारम्भिक ज्ञान और मूल्य प्राप्त करता है। परिवार में ही सबसे पहले उसके कुछ विषयों के बारे में दृष्टिकोण और झुकाव बनते हैं और उसको सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसा वह अपने माता-पिता के प्रभाव और सम्पर्क से प्राप्त करता है।

शैक्षिक संस्थाएँ

शैक्षिक संस्थाएँ राजनीतिक समाजीकरण के दूसरे महत्त्वपूर्ण एजेण्ट हैं। एलन आर बल कहते हैं कि समाजीकरण की व्यवस्था पर शिक्षा व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जो मूल्य स्कूलों और कॉलेजों में सिखाए जाते हैं वे बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। आल्मण्ड और वर्बा ने जब पाँचों देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया तो सभी स्थानों पर यही देखा कि पढ़े-लिखे लोग अपने जीवन पर सरकार के प्रभाव के विषय में बड़े जागरुक थे। वे राजनीति की ओर बहुत ध्यान देते थे और उनको राजनीतिक की अधिक जानकारी प्राप्त थी।

www.studyofeducation.com

कुलीन वर्ग

परिवार और शिक्षित संस्थाओं की तरह कुलीन वर्ग भी दृष्टिकोण या वृत्ति-विकास के महत्त्वपूर्ण स्रोतों की भूमिका अदा करते हैं। समकालीन औद्योगिक समाज में परिवार की भूमिका पहले से कम हो गई है जबकि कुलीन वर्ग (मित्र मण्डल, सामुदायिक समूह) आदि की भूमिका समाजीकरण में बढ़ गई है। आस्टिन रैने के अनुसार, माता-पिता और अध्यापकों के पश्चात् अधिकतर लोग अपना अधिक समय अपनी आयु के लोगों जिनका स्तर, समस्याएँ और लगाव एक समान होते हैं, विशेष समूहों और परिवार से बाहर के लोगों के बीच ही व्यतीत करते हैं। जेम्स कॉलमैन के अनुसार, विकसित समाजों, जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका और स्वीडन में माता-पिता और अध्यापकों का प्रभाव किशोरावस्था से ही समाप्त होने लगता है और कुलीन वर्ग प्रभाव अधिक होने लगता है।

कार्य अथवा नौकरी अनुभव

नौकरी के अनुभव पी राजनीतिक झुकायों को आकार देते है। नौकरी और इसके इर्द-गिर्द निर्मित औपचारिक और अनौपचारिक संगठन; जैसे-संच, सामाजिक संगठन, यलब आदि भी राजनीतिक सूचना और विश्वासों के साधन होते है। हित समूहों की गतिविधियाँ जैसे कि हड़ताल आदि में भागीदारी भी राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। च्यापार संघों में शामिल होकर उनके द्वारा चलाए जाने वाले आन्दोलनों में भाग लेना भी समाजीकरण का स्रोत है।

जन-प्रसार साधन

आल्मण्ड और पॉवेल के अनुसार, "जन संचार के माध्यमों की राजनीतिक समाजीकरण में भूमिका को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। वास्तव में बीसवीं शताब्दी की संचार क्रान्ति के पश्चात् जन-प्रसार के माध्यमों, विशेषत: प्रेस, दूरदर्शन और रेडियो ने प्रत्यक्ष राजनीतिक समाजीकरण के शक्तिशाली साधनों के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया।"

जन संचार की एक नियन्त्रित व्यवस्था लोगों के राजनीतिक विश्वासों को आकार देने का एक शक्तिशाली साधन बनती है इसका विशेष प्रयोग सत्तावादी या अधिनायकवादी व्यवस्था में किया जाता है। विभिन्न राजनीतिक घटनाओं के विषय में जानकारी देने के साथ-साथ जन-संचार साधन व्यक्तियों के ज्ञान को बढ़ाते हैं और उनके झुकावों का निर्माण करते हैं। रूप में विकसित देशों में विकसित

ऑस्टिन रैने के मत में सभी तकनीकी संचार साधन अधिकतर लोगों के मूल झुकाव और विशेष मुद्दों पर निर्णय करने में महत्त्वपूर्ण साधन होते हैं। लूसियन पाई के अनुसार, "जन-संचार साधनों के द्वारा समाजीकरण, एक उत्तम और सरल तकनीक है और यह आधुनिकीकरण के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण है।"

राजनीतिक व्यवस्था से प्रत्यक्ष सम्पर्क

आल्मण्ड और पॉवेल के अनुसार, व्यवस्था में विशेष वर्गों से प्रत्यक्ष औपचारिक और अनौपचारिक सम्बन्ध व्यवस्था के प्रति लोगों के झुकावों को आकार देने का शक्तिशाली ढंग है। इस सन्दर्भ में लोगों और सरकार और राजनीतिक दलों का प्रत्यक्ष सम्पर्क, महत्त्वपूर्ण साधन है। राजनीतिक प्रचार, चुनाव प्रचार, विचारों के लिखित प्रकटीकरण, राजनीतिक भाषा बोलना, हित स्पष्टीकरण, हित-समूहीकरण आदि के माध्यम से राजनीतिक दल राजनीतिक समाजीकरण के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष साधन बन जाते हैं।

www.studyofeducation.com

राजनीतिक समाजीकरण की उपयोगिता

राजनीतिक समाजीकरण के आधार पर राजनीतिक वैज्ञानिक राजनीतिक प्रक्रिया की प्रकृति का विश्लेषण व्यवस्थित ढंग से कर सकने के योग्य हुए हैं। वे इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर सकते हैं कि राजनीति में लोग किस प्रकार शामिल होते हैं? लोग अपनी राजनीतिक संस्कृति के मूल्यों को किस प्रकार प्राप्त करते हैं, लोग राजनीतिक भूमिकाएं निभाने के लिए और राजनीतिक कार्यकर्ता बनने के लिए किस प्रकार आगे आते हैं?

- राजनीतिक समाजीकरण समाज में सजग नागरिकता, सांस्कृतिक प्रसारण, राजनीतिक व्यवस्था के लिए समर्थन, राजनीतिक प्रक्रिया में स्थिरता और परिवर्तन और सत्ता के लिए औचित्यपूर्णता का एक साधन या स्रोत होता है। समरूप राजनीतिक समाजीकरण राजनीतिक संस्थाओं की स्थिरता और उनके इच्छित विकास का स्रोत होता है। >
- राजनीतिक संस्कृति व्यक्ति को राजनीतिक व्यवस्था का कुशल और सक्रिय सदस्य बनाने का कार्य करती है।
- यह वह साधन है, जिसके माध्यम से राजनीतिक संस्कृति को बनाए रखा और परिवर्तित किया जाता है। राजनीतिक संस्कृति में परिवर्तन केवल राजनीतिक समाजीकरण के माध्यम से ही आ सकते हैं। राजनीति के विद्यार्थी राजनीतिक समाजीकरण के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था के समाजशास्त्रीय वातावरण और राजनीतिक विकास और परिवर्तन की प्रकृति का विश्लेषण भी कर सकते हैं।

- राजनीतिक स्थिरता और परिवर्तन के अध्ययन के लिए राजनीतिक समाजीकरण का अध्ययन एक बड़ा महत्त्वपूर्ण और आशाजनक दृष्टिकोण है। विभिन्न समकालीन समाजों में हो रहे परिवर्तनों के अध्ययन की आवश्यकता ने इस धारणा के महत्त्व को और भी अधिक बढ़ा दिया है।
- नए देशों के आगमन, संचार साधनों में निरन्तर वृद्धि ने और तकनीकी विकास के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों के प्रभाव ने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं, जिनमें कि झुकाव बनाने वाले पुराने साधन अब उचित नहीं रहे।
- परम्परागत समाजीकरण संरचनाओं के लिए अब नए साधनों को प्राप्त करके कार्य करना आवश्यक हो गया है।
- राजनीतिक समाजीकरण के अध्ययन में व्यक्ति और उसके राजनीतिक व्यवहार, मूल्यों और क्रियाओं पर सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तत्त्वों का परीक्षण भी शामिल होता है। यह अध्ययन राजनीतिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था के बीच सम्बन्धों के अध्ययन, एक राजनीतिक व्यवस्था में निरन्तर चलती रहने वाली रुपान्तरण और एकीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करने में हमारी सहायता करता है।
- एक व्यवस्था के लोगों की राजनीतिक भागीदारिता और स्तर और प्रकृति के विषय में यह धारणा हमें महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकती है। इसका उपयोग राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता का विश्लेषण करने के लिए भी किया जा सकता है।
- शासक वर्ग के द्वारा राजनीतिक समाजीकरण का प्रयोग अपनी नीतियों, योजनाओं और कार्यों के लिए समर्थन जुटाने के लिए सफलतापूर्वक किया जा सकता है। राजनीतिक समाजीकरण में परिवर्तन से सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के व्यवहार में परिवर्तन आ सकता है। यह वास्तव में एक लाभप्रद नई धारणा है, जिसने राजनीतिक प्रक्रिया का वास्तविक, आनुभविक और व्यापक विश्लेषण करने के लिए राजनीतिक वैज्ञानिकों की बहुत सहायता की है। इस प्रकार, राजनीतिक समाजीकरण की उपयोगिता को बेहतर बनाने में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

www.studyofeducation.com